कामिल नजात

हम क्यों अल-मसीह के पैरोकार हो गए

बरकतुल्लाह

कामिल नजात

हम क्यों अल-मसीह के पैरोकार हो गए

बरकतुल्लाह

kāmil najāt. ham kyoṅ
al-masīh ke pairokār ho gae.

Perfect Salvation. Why We Became
Followers of al-Masih

by Barkatullah
(Urdu—Hindi script)

© 2018 Chashma Media
published and printed by
Good Word, New Delhi

Bible quotations are from UGV.

for enquiries or to request more copies:
askandanswer786@gmail.com

1 शेख़ एहसानुल्लाह

उन्नीसवीं सदी के बीच में नारोवाल एक छोटा-सा क़सबा था। दरयाए-रावी के शिमाली कनारे के क़रीब पड़ी इस जगह तक न कोई रेल और न कोई पक्की सड़क पहुँती थी। कहते हैं कि साढ़े पाँच सौ साल हुए ज़िला मुल्तान के चंद अरोड़े हिंदू ख़ानदान सैयद जनीबुल्लाह के ज़रीए मुसलमान होकर इस जगह टिक गए। सैयद जनीबुल्लाह की ख़ानक़ाह शहर के बाहर मौजूद है।

ख़ाजगान की क़ौम

यह मुसलमान ख़ाजगान कहलाते थे और शिया थे। वह नमाज़, रोज़ा और दीगर रुसूम के सख़्त पाबंद थे। मुहर्रम के वक़्त ताज़िया निकालना, मातम करना और मरसिये पढ़ना उनका मामूल था।

उस वक़्त नारोवाल की आबादी तक़रीबन दो-तीन हज़ार थी। एक हिस्से में ख़ाजगान की क़ौम और दूसरे में हिंदू, सिख और अहले-सुन्नत बसते थे। लेकिन किसी क़िस्म की दुश्मनी न थी।

ख़ाजगान के सब लोग ब्योपार थे। नारोवाल तक जाने की सब सड़कें कच्ची थीं, और वह हर तरफ़ से नदी-नालों और रावी दरिया से घिरा हुआ था। लिहाज़ा उन दिनों में सफ़र करना अज़ाब था। लोग क़सबे के बाहर जाना नहीं चाहते थे, और रफ़्ता रफ़्ता क़ौम का अकसर हिस्सा ग़रीब और नादार हो गया। लेकिन किसी ने इस क़ौम में कभी किसी को भीक माँगते नहीं देखा।

मसीह के पहले पैरोकार

एक दिन ख़ाजगान का चौधरी शेख़ हसैन बख़्श सियालकोट गया। वहाँ उसकी मुलाक़ात किसी से हुई जिसने उसे इंजील जलील की ख़ुशख़बरी सुनाई। इस पैग़ाम में कुछ ऐसा जादू था कि उसने अल-मसीह के क़दमों में आने का फ़ैसला करके बपतिस्मा पा लिया। जब वह नारोवाल वापस आया तो उसके अपने अजनबी हो गए। उसे तरह तरह की

तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा, पर वह ज़रा न घबराया। उसकी रात-दिन यही दुआ थी कि उसके बेटे भी अल-मसीह के फ़रमाँबरदार हो जाएँ। ख़ुदा ने उसकी दुआ सुन ली। वफ़ात से पहले उसका दूसरा बेटा और फिर पहला बेटा अपनी बीवियों समेत ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में आ गए।

तीसरा बेटा बाद में अल-मसीह का पैरोकार हो गया। उसकी आदत लड़ाई-झगड़े की थी जिसकी वजह से लोग उसे "कुपत्ता" बुलाया करते थे। अब उसकी तबीयत ऐसी बदल गई कि उसका नाम "सुपत्ता" पड़ गया। चौथा बेटा निक्कू शाह सबके बाद ईमान लाया।

1870 में एक परदेसी बनाम बेटमन पहली बार नारोवाल आया। वह ख़ाजगान के मुहल्ले में रहने लगा। उसकी अनथक कोशिशों का नतीजा यह हुआ कि मिशन स्कूल के तालिब-इल्म एक दूसरे के बाद अल-मसीह के क़दमों में आने लगे। हर तरफ़ शोर मच गया। लेकिन फ़साद और ग़ौग़ा के बावुजूद यह जोशीला मुबल्लिग़ और हैड-मास्टर भोला नाथ इंजील का पैग़ाम सुनाते रहे।

शेख़ एहसान अली

उस वक़्त ख़ाजगान में से भी कई-एक ख़ुशहाल ख़ानदान और अफ़राद मसीह के फ़रमाँबरदार हो गए थे। शेख़ एहसान अली भी इस क़ौम के एक ऐसे फ़रद थे।

शेख़ एहसान अली के बाप शेख़ बनिया चमड़े का कारोबार करते थे। वह बड़े ज़ाहिद और मुत्तक़ी थे। इन्हीं वुजूहात के बाइस वह मुमताज़ और इज़्ज़त के लायक़ समझे जाते थे। जब उनका ज़िक्र करना होता तो "जनाब बनिया" या सिर्फ़ "जनाब" कहते। उनका वक़्त बेशतर मसजिद में कटता। जब लोग उन्हें दुकान पर न पाते तो सीधे मसजिद में मिलने को चले जाते थे। उनकी शादी भी एक ऐसी शरीफ़ बीबी से हुई जो उनकी तरह नमाज़, रोज़ा और शरीअत की सख़्त पाबंद थीं। उन के तीन बेटे पैदा हुए : एहसान अली, रहमत अली और मोहसिन अली।

जब उनके बेटे चार-एक साल के हुए तो उन्हें मसजिद के मकतब में डाल दिया गया। नतीजे में जब सयाने हुए तो क़ुरान के हाफ़िज़ और शिया मज़हब में पक्के हो गए। इधर माँ-बाप दोनों सौमो-सलात के पाबंद, उधर मसजिदो-मकतब की तालीम ने सोने पर सुहागे का काम दे दिया।

ईसाई इमान से नफ़रत

एहसान अली को इल्म हासिल करने का बड़ा शौक़ था। अब नारोवाल में मिशन स्कूल मौजूद था जिसमें नारोवाल के हिंदू, मुसलमान, सुन्नी, शिया और सिख लड़के पढ़ते थे। इर्दगिर्द के गाँवों के लड़के भी पैदल चलकर स्कूल आया करते थे। एहसान अली को पढ़ने का शौक़ था, लेकिन स्कूल ईसाइयों का था जिसमें इंजील की तालीम लाज़िमी थी। पहले तो वह हिचकिचाया, लेकिन चूँकि वह कट्टर शिया था उसने दाख़िल होने में कोई हर्ज न समझा। स्कूल के बाद वह अपने बाप के कारोबार में मदद देता था।

स्कूल के तालिब-इल्मों को इंजील की तालीम दी जाती थी और साथ साथ हिंदू मज़हब और इस्लाम के उसूल पर भी बहस हुआ करती थी। यह देख कर एहसान अली ने इंजील का मुतालआ करके एतराज़ात तैयार किए। हर मौक़े पर वह स्कूल के उस्ताद मियाँ नुसरतुल्लाह को निहायत गुस्ताख़ी से अपने एतराज़ पेश करता।

इस में वह बेटमन तक किसी को नहीं छोड़ता था। स्कूल के अंदर और बाहर बाज़ारी मुनादी के मौक़े पर वह उन पर एतराज़ात की बौछाड़ कर देता था।

बेटमन के साथ सफ़र

छोटी उम्र में ही एहसान अली की बीनाई में कमी हो गई थी, और तबीबों के इलाज से कुछ फ़ायदा न हुआ। उन दिनों में नारोवाल में कोई हस्पताल न था। अब बेटमन अपने पास चंद अँग्रेज़ी दवाइयाँ रखता था जिनसे वह मामूली अमराज़ का इलाज किया करता था। इस वजह से एहसान अली कभी कभी आँखों के इलाज के लिए उसके पास जाया करता था। एक रोज़ बेटमन ने उसे कहा, “मैं डाक्टर नहीं हूँ, लेकिन अगर तुम मेरे साथ लाहौर चलो तो वहाँ तुम्हारा अच्छा इलाज हो सकता है।”

एहसान एली राज़ी हुआ। मुक़र्ररा रोज़ से एक रात पहले वह अपने एक नज़दीकी रिश्तेदार बनाम क़ुरबान को साथ लेकर बेटमन के पास पहुँच गया। उन दिनों में बेटमन एक छोटे से ख़ैमे में रहा करता था। जब उसने देखा कि एक की बजाए दो आ गए हैं तो उसने पूछा कि यह दूसरा लड़का कौन है?

एहसान ने जवाब दिया, “यह मेरी बिरादरी का एक लड़का है। चूँकि यह सच बोलने का आदी है मैं उसे अपने साथ ले आया हूँ ताकि लोगों में गवाही दे कि मैं आपके साथ सिर्फ़ आँखों के इलाज के लिए जा रहा हूँ और ईसाई होना नहीं चाहता।”

बेटमन अपने रोज़-नामचे में लिखते हैं,

> मैंने हैरान होकर कहा, “क्या तुम जैसे जोशीले मुसलमान के लिए भी गवाही की कोई ज़रूरत है?” बहरहाल मैं दोनों लड़कों को अपने छोटे-से ख़ैमे में ले गया, और वह मेरी चारपाई के नीचे ज़मीन पर सो गए।
>
> आधी रात के क़रीब एहसान ने क़ुरबान को झँझोड़कर जगाया और कहा, “उठ क़ुरबान! उठ! नमाज़ पढ़ना नींद से हज़ार दर्जा बेहतर है। मुर्ग़ ने बाँग दे दी है।” लेकिन नींद का ग़लबा दोनों पर तारी था और वह दोनों सो गए। जब सुबहे-काज़िब नमूदार हुई और मुर्ग़ चारों तरफ़ बाँग देने लगे तो एहसान ने क़ुरबान को फिर झँझोड़ा और कहा, “क़ुरबान, अब तो उठ। अब तो सूरज नेज़ा-भर ऊँचा हो गया है।”
>
> वह दोनों तो नमाज़ पढ़ने चले गए लेकिन मैं सोता रहा। जब सुबहे-सादिक़ नमूदार हुई तो मैं भी उठ खड़ा हुआ। बाहर जाकर देखा कि दोनों लड़के कुएँ पर बैठे हैं। सलाम-दुआ के बाद मैंने उनसे पूछा, “क्या तुमने नमाज़ पढ़ ली है?”
>
> एहसान ने जवाब दिया, “हाँ, हमने तो पढ़ ली है” और लफ़्ज़ “हम” पर ज़ोर दिया ताकि इस्लामी वक़्ते-नमाज़ और ईसाइयों की इबादत के वक़्त की तमीज़ ज़ाहिर हो जाए और इस्लामी वक़्त की बरतरी साबित हो जाए।
>
> मैंने पूछा, “क्या तुमने ख़ुदा से उस झूट के लिए जो तुमने सुबह-सवेरे क़ुरबान से बोला था माफ़ी माँगी है?”
>
> उसने कहा, “मैंने कब झूट बोला है?”
>
> मैंने जवाब दिया, “क्या तुमने नहीं कहा था कि अब तो सूरज एक नेज़ा ऊँचा हो गया है हालाँकि अभी मुर्ग़ ने बाँग दी थी?”
>
> इसका उससे कोई जवाब न बन आया। क़ुरबान मुझे नहीफ़ और बीमार नज़र आता था। चुनाँचे जब चलने का वक़्त आया तो मैंने एहसान को कहा, “तुम्हारी आँखें कमज़ोर हैं, लेकिन तुम्हारी टाँगें मज़बूत हैं। बेहतर है कि क़ुरबान मेरे पीछे ऊँट पर सवार हो जाए और तुम पैदल चलो।” हम तीनों अमृतसर के रास्ते लाहौर

> की जानिब चल पड़े। मैं और क़ुरबान ऊँट पर सवार होकर आगे निकल गए और एहसान लंबी छलाँगें मारता पैदल चला आया।

दिसंबर के बिच के दिन थे। सर्दी बड़ी शिद्दत की थी। राह में एक नदी थी जिसको पार करते वक़्त बेटमन और क़ुरबान दोनों पानी में जा पड़े। बेटमन ने पहले क़ुरबान को पानी में से निकालकर उसके कपड़े रेत पर सुखाए। फिर ही उसने अपने कपड़ों को उतारकर उन्हें सुखाया। महब्बत के इस इज़हार से एहसान और क़ुरबान दोनों पर बड़ा असर पड़ा। जब बेटमन और क़ुरबान के कपड़े सूख गए तो वह दुबारा ऊँट पर सवार होकर अमृतसर की जानिब चल पड़े। बेटमन लिखते हैं,

> हम दोनों ऊँट पर एहसान से बहुत आगे चले गए थे। और यों हम दो दिन तक इकट्ठे ऊँट पर रहे। क़ुरबान बेचारा बीमार था, और मुझे उस पर बहुत तरस आता था। मैंने उससे हमदर्दी ज़ाहिर की, और फिर मैंने उसे ख़ुदावंद मसीह का पैग़ाम सुनाया जो उसके लिए बिलकुल नया था। मैंने उसे बताया कि ख़ुदावंद मौत पर ग़ालिब आया है और यों उसने मौत का डंक तोड़ दिया है। जब तक हम लाहौर पहुँचे क़ुरबान हक़ का मुतलाशी बन चुका था। हम दोनों ने एहसान को कुछ न बताया, क्योंकि हम दोनों जानते थे कि अगर उसे उन बातों का कहीं इल्म हो गया तो वह क़ुरबान को ज़बरदस्ती अपने हमराह वापस नारोवाल ले जाएगा।
>
> जब हम लाहौर पहुँचे तो मैं इन दोनों को अपने एक दोस्त के हाँ ले गया जो बड़ा क़ाबिल डाक्टर था। एहसान की आँखों को दिखाने के बाद मैंने उससे क़ुरबान के लिए दवा माँगी। उसने दवा तो दे दी लेकिन साथ ही यह कह दिया कि वह इस मूज़ी मरज़ से नहीं बचेगा।
>
> जब हम वापस अमृतसर पहुँचे तो मैं एक दोस्त के हाँ ठहरा जिसने एक कमरा मुझे दिया जबकि दूसरे कमरे में उसने दोनों लड़कों को उतारा। मैं चाहता था कि अमृतसर में चंद दिन रहकर मौक़ा पाकर क़ुरबान को इंजील जलील का पैग़ाम सुनाऊँ और एहसान को इस बात का पता तक न लगे। इस मक़सद के तहत मैं एहसान को किसी न किसी बहाने से बाहर भेजता रहता था। बदक़िस्मती से मुझे दूसरे रोज़ ही नारोवाल से पैग़ाम मिला कि मेरा फ़ौरन वहाँ जाना लाज़िमी है। मेरे और नारोवाल के दरमियान तीस मील का फ़ासिला और दो दरिया हाइल थे, और मुझे वापस फ़ौरन चल पड़ना था। मैंने एहसान को किसी काम पर बाहर भेज

दिया और फिर क़ुरबान को कहा, “मैं दो दिन के बाद वापस आ जाऊँगा। तुम यहीं रहना।”

उसने मुझसे पहला सवाल यह किया कि अगर आप चले गए तो मुझे कौन तालीम देगा?

मैंने उसे पढ़ने के लिए किताबे-मुक़द्दस की एक जिल्द दी। उसने किताब को ख़ुशी से लेकर अपने तकिया के नीचे रख लिया। लेकिन कहने लगा, “यह किताब तो बड़ी है, और भाई एहसान इसको देख लेगा। फिर मैं क्या करूँगा?”

इस पर मैंने उसे ज़बूर शरीफ़ की एक जिल्द दी। इसको पाकर वह कहने लगा, “यह किताब तकिए के अंदर तो छुप सकती है, लेकिन क्या इसमें हज़रत मसीह रूहुल्लाह का भी ज़िक्र है?” किताब देकर मैं नारोवाल चला गया।

क़ुरबान ज़बूरों को पढ़ रहा था कि उसे लेटे लेटे नींद आ गई, और किताब खुली की खुली रह गई। जब एहसान वापस कमरे में आया तो उसकी नज़र किताब पर पड़ी। उसने क़ुरबान को जगाकर दुरुश्ती से पूछा, “यह क्या है? तुमको यह किताब कहाँ से मिली और तुमने इसको क्यों लिया?”

उसने जवाब दिया, “बेटमन ने मुझे दी है, क्योंकि मैंने उससे माँगी थी, और मैं मसीह का पैरोकार होना चाहता हूँ।”

उसका यह कहना था कि एहसान ने उसे बिस्तर में से निकाल घसीटा और अपने हमराह नारोवाल ले गया। इस वाकिये के तक़रीबन एक माह बाद मैं शियों के क़ब्रिस्तान में से जा रहा था कि मैंने देखा कि लोग क़ुरबान का जनाज़ा लिए आ रहे थे।

सच्चाई की तलाश

एहसान अली न सिर्फ़ कट्टर शिया था बल्कि वह एक हस्सास दिल और रौशन ज़मीर भी रखता था। जब बेटमन ने क़ुरबान को नदी से निकालकर उसकी ख़बरगीरी की तो वह चौंक पड़ा। वह सोचने लगा कि एक अंग्रेज़ ने क्यों तकलीफ़ उठाकर एक मुसलमान बीमार लड़के का पहले ख़याल किया, हालाँकि उसने क़ुरबान को पहले कभी देखा भी न था। उसका हस्सास दिल उसे क़ुरबान की मौत का भी किसी हद तक ज़िम्मेदार क़रार देता था। अगर वह उसे अमृतसर से घसीटकर ज़बरदस्ती नारोवाल न ले जाता तो वह

शायद न मरता। फिर वह अपने दिल को समझाता कि क़ुरबान को जहन्नुम जाने से बचा लिया। लेकिन उसका दिल इस क़िस्म की तसल्लियों को न मानता। फिर वह यह सोचता कि बेटमन ने सिर्फ़ मेरी आँखें दिखाने के लिए सख़्त सर्दियों के दिनों में क्यों साठ-सत्तर मील आने और साठ-सत्तर मील जाने की मुसीबत उठाई हालाँकि मैं हमेशा उससे सख़्तकलामी और गुस्ताख़ी से पेश आता रहा था। ग़रज़ उसके दिल में रूहानी कशमकश और ज़हनी दिक़्क़त शुरू हो गई जो उसे किसी हालत में भी चैन न लेने देती थी।

दीनी तास्सुब की वजह से एहसान अली ने स्कूल छोड़ दिया था। अब वह अपने बाप के कारोबार में मदद देता था। साथ ही वह अजनासे-ख़ुरदनी चावल और गेहूँ वग़ैरा की थोक तिजारत करता था। नारोवाल से क़रीब तीन मील के फ़ासिले पर मंदराँवाला गाँव आला क़िस्म के चावल के लिए मशहूर था। चुनाँचे वहाँ से और दूसरे देहात से वह अजनासे-ख़ुरदनी ख़रीदकर लाता और नफ़ा पर फ़रोख़्त करता था। नतीजे में उसका ख़ानदान पहले से भी ज़्यादा ख़ुशहाल हो गया।

गाँव आते-जाते वक़्त यह 17, 18-साला नौजवान राह में दीनी मसायल पर ग़ौर किया करता था। उसे यह तालीम दी गई थी कि हज़रत मसीह पर जो इंजील नाज़िल हुई थी वह मुहर्रफ़ हो गई है। इसी वजह से उसमें तसलीस, उलूहियते-मसीह, कफ़्फ़ारा और इब्नुल्लाह जैसी तालीम मौजूद हो गई है और उस में तज़ाद पाया जाता है। फिर उसे रह रहकर किताबे-मुक़द्दस के उस्तादों की नरमी, तहम्मुल, सब्र और मुहब्बत याद आती। यह सवाल उसके दिल में पैदा होता कि इस क़िस्म की तालीम से ऐसी बातें किस तरह पैदा हो सकती हैं? ख़ुदफ़रामोशी, ईसार और प्यार जैसी नेकियाँ क्योंकर ईसाइयों में पाई जाती हैं? अगर उनकी तालीम बिगड़ी हुई है तो इस क़िस्म की नेकियाँ उनमें कहाँ से आ गईं? यह सोचकर वह क़ुरानो-इंजील और शिया और ईसाई दीन की तालीम का मुवाज़ना करने लगा।

मसीह की तरफ़ रुजू

1876 का ज़िक्र है कि एहसान अली ऐन दोपहर के वक़्त मिशन स्कूल के हैड-मास्टर भोला नाथ घोष के घर गया। उनके बेटे लिखते हैं,

मेरी उम्र क़रीबन 6 साल की थी। मैं अपने बाप के पास कमरे के अंदर बैठा हुआ था। बाहर सख़्त धूप थी। कड़कती गरमी के दिन थे। मैंने देखा कि एक अठारा-साला जवान कमरे के दरवाज़े की चिक उठाकर शीशों में से अंदर झाँक रहा है। मैंने अपने बाप को जगाया और उठकर लड़के के लिए दरवाज़ा खोला। लड़का अंदर आया और मेरे बाप के पास बैठ गया। दोनों एक दूसरे से बात करने लगे। रफ़्ता रफ़्ता लड़के की आवाज़ ऊँची और दुरुश्त होती गई। लेकिन मेरे बाप की आवाज़ नरम और धीमी रही। ऐसा मालूम होता था कि वह लड़के को मलायमत से कुछ समझा रहे हैं। उनकी आँखों से मुहब्बत टपक रही थी, लेकिन लड़के की आँखों से ग़ुस्से के शरारे निकल रहे थे। यह गुफ़्तगू कोई चार-पाँच घंटे जारी रही जिसके बाद लड़का चला गया।

उसके जाने के बाद मैंने अपने बाप से पूछा, "यह कौन था और क्या कहता था?"

मेरे बाप ने मुझे बताया, "यह लड़का एहसान है जो ईसाई मज़हब का सख़्ततरीन दुश्मन था लेकिन नामालूम क्यों। अब वह हक़ का तालिब हो गया है और इस्लामी और ईसाई मसायल का मुक़ाबला करने के लिए मुझसे मदद लेने आया था।"

एहसान अली बेटमन, मियाँ नुसरतुल्लाह और अपने मौलवी सैयद हुसैन अली शाह के पास अकसर जाने लगा। वह दीनी मसायल छेड़ देता था ताकि राहे-हक़ को इख़्तियार करे। कभी कभी वह हिचकिचाकर अपने बाप और माँ से भी दीनी मसायल के बारे में सवाल करता, क्योंकि उसके दिल में उनकी बड़ी इज़्ज़त थी।

इधर उसका हमजमात दीना नाथ प्रेतू दित्ता मसीह का पैरोकार हो चुका था। मियाँ सुपत्ता और उसके बेटे रहमत और अहमद मसीह पर ईमान लाए थे। वारिसुद्दीन को भी बपतिस्मा मिला था। उसके हममकतब हमीदुद्दीन, विधावा मल और सुन्नत शाह भी ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में आ चुके थे। एहसान अली इन लड़कों से भी मज़हबी गुफ़्तगू करता था। उस के नज़दीक सबसे बड़ा मसला तहरीफ़े-इंजील था। अगर इंजील मुहर्रफ़ और मनसूख़ नहीं हुई और उसकी सेहत पर कोई एतराज़ नहीं हो सकता तो इबनियते-मसीह, उलूहियते-मसीह, कफ़्फ़ारा और तसलीस वग़ैरा के मसले ईमान की रू से मानने होंगे, चाहे इनसानी अक़्ल इन उक़्दों को हल कर सके या न कर सके। क्योंकि ज़ाते-बारी तआला इनसानी उदराक से बुलंदो-बाला है।

यों एहसान अली हर वक़्त इस तलाश में रहा कि क्या मौजूदा इंजील वही है जो हज़रत मसीह लाए थे। उन दिनों में फ़ैंडर की किताब मीज़ानुल-हक़ का उर्दू में तरजुमा हो गया था। उसके मुतालए से उस पर यह ज़ाहिर हो गया कि जिस इंजील की क़ुरान बार बार और जा बजा तसदीक़ करता है वह वही इंजील है जो ज़मानाए-रसूल में ईसाई अरबों के हाथों में थी। उसी की हज़ारों नक़लें ज़मानाए-मसीह से ज़मानाए-मुहम्मद तक मशरिक़ और मग़रिब के मुख़्तलिफ़ मुल्कों में मौजूद थीं। और उसी के तरजुमे उन छः सदियों के दौरान बीसियों ज़बानों में हर मुल्क में मुरवज्ज थे। चुनाँचे ज़मानाए-रसूल से पहले इंजील की सेहत में फ़तूर नामुमकिन था, जबकि ज़मानाए-मुहम्मद के बाद तो यह बिलकुल नामुमकिन था। इसलिए इंजील के बारे में मौलवियों के ख़यालात बेबुनियाद हैं।

अब उसने नए सिरे से इंजीलो-क़ुरान का गहरा मुतालआ शुरू कर दिया। वह ख़ुदा से सच्चे दिल से दुआ करता था कि ऐ ख़ुदा, मुझे अपनी राह दिखा और सिराते-मुस्तक़ीम पर चलने की तौफ़ीक़ अता कर। उसने शिया कुतुबे-तफ़सीरो-सियर का ग़ौर से मुतालआ किया, क्योंकि अहले-सुन्नत की अहादीस उसे क़ाबिले-एतराज़ नज़र आती थीं जिन पर ईसाइयों के एतराज़ात मबनी होते थे।

क़ुरान शरीफ़ की आयात से उसे यह इल्म हो गया कि ख़ुदा रसूले-अरबी को कई मक़ामात पर हुक्म देता है कि वह अपने गुनाहों के लिए मग़फ़िरत के तालिब हों और कि क़ियामत के दिन आँहज़रत गुनाहगारों की शफ़ाअत और सिफ़ारिश नहीं करेंगे। इसके बरअक्स हज़रत मसीह की इसमत पर क़ुरानो-इंजील दोनों गवाह हैं, और सब नबी गवाही देते हैं कि जो कोई उन पर ईमान लाएगा वह उनके नाम से गुनाहों की माफ़ी पाएगा।

घोष साहब और बेटमन ने एहसान अली को बताया कि इंजील तीन ख़ुदाओं पर ईमान रखने की तालीम नहीं देती बल्कि तौहीद में तसलीस और तसलीस में तौहीद पर। मसीह ख़ुदावंद ने साफ़ साफ़ फ़रमाया है कि ईमानदार ख़ुदाए-वाहिद और बरहक़ को मानें। और पौलुस रसूल भी कहता है कि एक के सिवा कोई ख़ुदा नहीं। ख़ुदा एक ही है यानी बाप जिसकी तरफ़ से सब चीज़ें हैं और एक ही ख़ुदावंद है यानी ईसा मसीह जिसके वसीले से सब चीज़ें वुजूद में आईं। इबनियते-मसीह के बारे में उन्होंने बताया कि इंजील की रू से बीबी मरियम ख़ुदा की ज़ौजा न थीं बल्कि इस ख़िताब से रूहानी रिश्ते का ज़ाहिर करना मुराद है।

कफ़्फ़ारे के मुताल्लिक़ उन्होंने कहा कि अगर गाय, बकरी, ऊँट वग़ैरा गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो सकते हैं तो मसीह जो "ख़ुदा का लेला" है दुनिया के गुनाह क्यों नहीं उठा सकता?

ग़रज़, दोनों ने मज़बूत दलायल से एहसान अली को तसल्ली देने की पूरी कोशिश की।

ज्यों-ज्यों एहसान अली मसीह और इंजीले-मसीह के क़रीब आता गया उसका इज़्तराब बढ़ता गया, क्योंकि मसीह पर ईमान लाने के नतीजे उससे छुपे न थे। वह अपने माँ-बाप का पहलौठा बेटा था जिससे उनकी उम्मीदें वाबस्ता थीं। उसका ख़ानदान दीनी उमूर में पेश पेश और सबके लिए नमूना था। ऐसे मुमताज़ ख़ानदान का वह चशमो-चराग़ था। अगर उसने शिया मज़हब को तर्क कर दिया तो दुनिया क्या कहेगी? उसके बाप की नाक कट जाएगी। उसकी माँ जिसको वह हद से ज़्यादा प्यार करता था मारे ग़म के मर जाएगी। दोनों किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहेंगे। उसके दोनों भाइयों और बहनों का क्या हश्र होगा? ख़ानदान के मुख़्तलिफ़ अफ़राद के दिल जल जाएँगे।

कभी वह अपने मुताल्लिक़ सोचता कि मेरा मुस्तक़बिल क्या होगा? बिरादरी से ख़ारिज कर दिया जाऊँगा। ख़ानदान और घर से निकाल दिया जाऊँगा। मैं सबकी तरफ़ से मर जाऊँगा, और सब मेरी तरफ़ से मर जाएँगे। कोई मेरे साथ किसी तरह का सरोकार न रखेगा। मेरा कारोबार तबाह हो जाएगा, और मैं ख़ुद तबाहहाल, ख़ानाख़राब और ज़मीन पर आवारा फिरूँगा। इस क़िस्म के ख़यालात उसे शहर के बाहर वीराने में ले जाते जहाँ वह बड़ी आजिज़ी के साथ ख़ुदा से दुआ करता कि ऐ ख़ुदा मुझ पर रहम कर! मुझे इस घटाटोप अंधेरे से निकालकर अपने नूर में ले चल। मेरी बेक़रारी और बेचैनी को दूर कर, और मुझे ताक़त और क़ुव्वत अता कर ताकि मैं राहे-रास्त पर चलने की तौफ़ीक़ पाऊँ, कि मैं लान-तान की तरफ़ से बेपरवा होकर ख़ालिस नीयत से तेरी पैरवी करूँ। मेरा दिल हर तरफ़ से ख़ायफ़ है, लेकिन तू मेरे दिल में से हर क़िस्म का ख़ौफ़ और इज़्तराब निकाल दे। मुझे दिल का इतमीनान और जान का आराम अता कर। ऐ मसीह, तू सबको जो बोझ से दबे हुए हैं दावत देता है कि मेरे पास आओ। मैं तुमको आराम दूँगा और तुम्हारी जानें आराम पाएँगी। अपना इतमीनान मुझे अता कर।

ख़ुदा ने आख़िरकार उसकी दिली दुआ सुन ली और यशुअ की तरह उसे फ़रमाया,

> मैं तुझे कभी नहीं छोड़ूँगा, न तुझे तर्क करूँगा...लेकिन ख़बरदार, मज़बूत और बहुत दिलेर हो...मैं फिर कहता हूँ कि मज़बूत और दिलेर हो। न घबरा और न हौसला हार, क्योंकि जहाँ भी तू जाएगा वहाँ रब तेरा ख़ुदा तेरे साथ रहेगा। (यशुअ 1: 5, 7, 9)

आख़िर लोगों को पता लगा कि एहसान अली इस्लाम को तर्क करके मसीह का पैरोकार होना चाहता है। हर तरफ़ शोर मच गया। क़ियामते-सुग़रा बरपा हो गई। हर तरफ़ से लानत और फटकार का बौछाड़ शुरू हो गया। बेचारा एहसान उन्हें बहुतेरा कहता कि मेरे साथ बहस कर लो। मेरी अक़्ल मुझे कहती है कि ईसाई मज़हब ही अकेला सच्चा दीन है। लेकिन ऐसे शख़्स से बहस कौन करे जो बाज़ारी मुनादी में हर ईसाई वायज़ का नाक में दम कर दिया करता था। एक मन चले ने उसे जवाब में कहा

> صد لعنت و پھٹکار چنیں ذہنِ رسا را
>
> सदहा लानत और फटकार ऐसे तेज़ ज़हन को।

एहसान इस क़िस्म की पंजाबी-फ़ारसी शायरी पर हँस देता और जवाब में कहता

> خدا دارم چہ غم دارم   خدا دارم چہ غم دارم
>
> मुझे ख़ुदा हासिल है, मुझे क्या ग़म?
> मुझे ख़ुदा हासिल है, मुझे क्या ग़म?

जब उसके ख़ानदान को उसके ख़यालात की तबदीली का इल्म हुआ तो बाप ने बहुत समझाया। लेकिन वह एक न माना। आख़िर बाप ने कहा, "जा। गया-गुज़रा हुआ। नामुराद।"

माँ ने अपना सर पीट लिया और कहा, "तू उस शैतान (बेटमन) के पास करने क्या जाता है जो तुझको वरग़लाकर जहन्नुम की तरफ़ ले जा रहा है? मुहल्ले की औरतें कहती हैं कि वह जो है सो है, पर उसने एहसान पर जादू पढ़ दिया है। तावीज़-गंडे से इलाज करो।"

मँझला भाई रहमत अली सख़्त मुश्तइल हुआ और तैश में आकर लठ उठाकर चला कि ऐसे भाई को जान से मार देना बेहतर है जो ख़ानदान की इज़्ज़तो-आबरू का ख़याल नहीं करता। बिरादरी के लोग उससे किनारा करने लगे। बाप को कहा, "जनाब, उसे घर से निकाल दें। वह अज़ुए-मुअत्तल है।" किसी ने यह हवाई उड़ा दी कि एहसान को

कारोबार में घाटा पड़ा है और इस ख़सारे की वजह से ईसाई होना चाहता है। किसी ने कहा, “लालच बुरी बला है। अक़्लमंदों को अंधा कर देता है।” किसी ने कहा, “मेम से ब्याह करना चाहता है।”

ग़रज़ जितने मुँह उतनी बातें। लेकिन एहसान अब वह एहसान न था जो तैश में आकर लोगों को गालियाँ दिया करता था। वह हर शख़्स से तहम्मुल, सब्र और मलायमत से बात करता और लान-तान का जवाब ख़ुशमिज़ाजी से देकर हर एक के सामने इंजील की सदाक़त पेश करता था। जो लोग उससे बहस करना चाहते वह उन्हें खुला चैलेंज देकर कहता कि अगर तुम दलायल से मुझे क़ायल कर लो तो मैं मसीह का पैरोकार नहीं रहूँगा, लेकिन अगर तुम मेरी दलीलों का जवाब न दे सको तो तुम भी मेरे साथ मसीह पर ईमान लाओ। ख़ाजगान की बिरादरी उसका हाल देखकर हैरान थी कि क्या यही वह एहसान है जो बाज़ार और स्कूल में किसी ईसाई को खड़ा नहीं होने देता था और हर जगह उन्हें परेशान कर देता था।

हुक़्क़ा-पानी बंद

यह हालात देर तक नहीं रह सकते थे और न रहे। बिरादरी के सरबराह एहसान अली के बाप के पास गए और कहा, “जनाब, आप इस लड़के को समझाएँ। उसने एक फ़ितना बरपा कर रखा है, और अब हालात हमारी बरदाश्त से बाहर हो गए हैं। आपकी ख़ातिर हमको मंज़ूर थी, इस वास्ते हमने अभी तक उसे कुछ नहीं कहा। लेकिन उसकी ज़बान बढ़ती चली जा रही है। हर छोटे-बड़े को चैलेंज देता फिरता है। पहले हुसैन बख़्श ईसाई हो गया, फिर उसके बेटे-पोते ईसाई हो गए। वारिस ईसाई हो गया। इर्दगिर्द के गाँवों के लड़के ईसाई हो गए हैं और हो रहे हैं, और अब जनाब के लड़के ने हर जगह ऊधम मचा रखा है। आप ही बताएँ,

> क्योंकर बुझेगी आग यह घर घर लगी हुई?

अगर हमें जनाब का लिहाज़ न होता तो हम उसे दो दिन में सीधा कर लेते और फ़ौरन बिरादरी से ख़ारिज कर देते। उसे भी होश आ जाती।”

एहसान के बाप ने जवाब दिया, “मैंने उसे बहुतेरा समझाया है, लेकिन वह अपने इरादे का पक्का है। वह नहीं माना और न कभी मानेगा।”

उन्होंने कहा, “फिर बेहतर है कि आप उसे छोड़ दें।”

“जनाब” के सीने से एक आह निकली, और उन्होंने कहा, “मैं आख़िरत को इस दुनिया पर और अपने पहलौठे की मुहब्बत पर तरजीह देता हूँ।” उन्होंने एहसान को इन बातों की ख़बर दी।

उसने जवाब में कहा, “जनाब, मैं भी आख़िरत को इस दुनिया पर तरजीह देता हूँ और इसी वास्ते सब कुछ छोड़कर और आपकी, माँ की और भाइयों, रिश्तेदारों और अज़ीज़ो-अक़ारिब की मुहब्बत से मुँह मोड़कर मसीह का पैरोकार हो गया हूँ। लेकिन आप इस बात का यक़ीन रखें कि मैं आपका वही ताबेदार बेटा हूँ और ज़िंदगी के आख़िर तक आपका और माँ का फ़रमाँबरदार रहूँगा।”

बाप की आँखों से आँसू जारी हो गए। माँ दहाड़ें मारकर रोने लगी और एहसान से लिपट गई। आहो-नाला की आवाज़ें बुलंद हुईं। वह भी रोने लगा। बहनें, रहमत अली और मोहसिन अली सबके सब ज़ार ज़ार रोने लगे। आख़िर बाप ने कहा, “जब तू हमारी बात नहीं मानता तो जो तेरी मरज़ी है कर। लेकिन ईसाई होकर तू घर में नहीं रह सकता। बिरादरी तुझको ख़ारिज कर देगी और तू कहीं का न रहेगा।”

एहसान ने एक आह भर कर कहा

> ما خدا داریم و مارا ناخدا درکار نیست
> हमें ख़ुदा हासिल है, और हमें नाख़ुदा दरकार नहीं

वह घर से निकलकर सीधा बेटमन साहब के पास गया और उन्हें तमाम हालात बताए और कहा कि अब मैं बपतिस्मा पाने को तैयार हूँ। चुनाँचे 21 अप्रैल 1878 के रोज़ बेटमन ने एहसान अली को नारोवाल की इबादतगाह में बपतिस्मा दिया। उसका ईसाई नाम एहसानुल्लाह रखा गया।

स्कूल में दुबारा दाख़िला

बपतिस्मा पाने के बाद एहसानुल्लाह पैदल से बटाला के लिए रवाना हुआ। उसकी क़ौम ने हुक़्क़ा-पानी बंद कर दिया था। माँ-बाप, भाई-बहन और अज़ीज़ सब बेगाने हो गए थे, लेकिन उसका दिल इतमीनान से पुर और ख़ुशी से मामूर था। उसका मुस्तक़बिल तारीक था, लेकिन उसके ईमान का नूर उसके पाँव का चराग़ और उसकी राह की रौशनी था।

अब वह बीस-साला नौजवान था, और उसे ऐसा मालूम होता था कि जिस तरह ख़ुदा ने हज़रत इब्राहीम को कहा था,

> अपने वतन, अपने रिश्तेदारों और अपने बाप के घर को छोड़कर उस मुल्क में चला जा जो मैं तुझे दिखाऊँगा। मैं...तुझे बरकत दूँगा।
> (पैदाइश 12:1–12)

इसी तरह ख़ुदा ने उसे भी अपने वतन और रिश्तेदारों और अपने बाप के घर से निकाला है, और वह ज़रूर बरकत पाएगा। बटाला पहुँचकर वह ईसाइयों के घर गया और उन्हें बताया कि ख़ुदा ने उसे ईमान लाने की तौफ़ीक़ बख़्शी है।

उन दिनों में बटाला की जमात में बैरिंग, वाइटब्रेख़्ट, मिस टकर और बाबू ईशन चंद्र सिंघा जैसे अज़ीम लोग थे। अप्रैल 1878 में एहसानुल्लाह का बपतिस्मा हुआ था, और इसी अप्रैल को बैरिंग ने अपना स्कूल खोला जिसका पहला हैड-मास्टर बाबू ईशन चंद्र सिंघा मुक़र्रर हुए।

एहसानुल्लाह की उम्र बड़ी थी, क्योंकि वह अब बीस साल का नौजवान था। तो भी उसे इल्म हासिल करने का बेहद शौक़ था, इसलिए बैरिंग ने उसे अपने स्कूल में दाख़िल कर लिया। स्कूल में वह बड़ी मेहनत से काम करता और हमेशा जमात में अव्वल रहने की कोशिश किया करता था। अगर किसी रोज़ वह किसी मज़मून में अव्वल न रहता तो वह एक बेद लेकर स्कूल की बालाई मनज़िल पर चला जाता और अपने आपको बेद से पीटकर लहू-लुहान कर लिया करता था।

गुनाह से नजात का एहसास

1880 एहसानुल्लाह की ज़िंदगी में एक ऐसा मोड़ आया जिस से उस की पूरी ज़िंदगी बदल गई। अब तक वह दलायलो-बुरहान के ज़ोर से ईसाई ईमान का क़ायल था और हर एक को यही कहता था कि मेरे साथ बहस कर लो और अक़्ल के ज़ोर से मुझे क़ायल कर लो। लेकिन इस साल उसे यह एहसास हुआ कि दलायल और बुरहान से किसी शख़्स को गुनाह के पंजे से रिहाई हासिल नहीं हो सकती। ख़ुदावंद मसीह न सिर्फ़ अक़्ल का मालिक है बल्कि दिल और जज़बात पर भी सिर्फ़ वही क़ाबू कर सकता है। वही गुनाहगार को यह फ़ज़ल अता करता है कि वह अपने गुनाहों पर ग़ालिब आए।

स्कूल के जवान लड़के तरह तरह की आज़माइशों में गिर रहे थे। बटाला शहर का माहौल ही ऐसा था। एहसानुल्लाह ख़ुद इन आज़माइशों के ज़ोर से वाक़िफ़ हो रहा था। यों उस पर अब यह हक़ीक़त मुंकशिफ़ हो गई कि मेरा आक़ा न सिर्फ़ राह और हक़ है बल्कि ज़िंदगी और नजात भी है। उस की सलीब पर से एक ऐसा चश्मा निकलता है जिसमें नहाकर हर गुनाहगार पाक हो जाता है। यह एहसास एहसानुल्लाह में ज़िंदगी-भर कारफ़रमा रहा।

बीस साल के बाद उस ने ये वक़्त याद किया,

> मैं शर्म के साथ इक़रार करता हूँ कि बपतिस्मे के वक़्त मैं इंजील जलील के उसूल का सिर्फ़ अक़्ली तौर पर ही क़ायल हुआ था। मुझे इस हक़ीक़त का ज़ाती तजरिबा न था कि ईसाई दीन की ताक़त हर इनसान की रूहानी ज़िंदगी को तबदील कर देती है। यह हक़ीक़त मुझ पर दो साल बाद रौशन हुई जब ख़ुदा ने मेरे दिल को पकड़ा। उस साल से यह एहसास मुझमें रोज़ बरोज़ बढ़ता ही जा रहा है और मैं हर छोटे-बड़े इनसान को यही ख़ुशख़बरी सुनाता आया हूँ और सुनाता रहूँगा।

बटाला में उस्ताद

जब एहसानुल्लाह ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी के मेट्रिकुलेशन का इम्तहान पास कर लिया तो बैरिंग साहब ने उसे स्कूल में उस्ताद मुक़र्रर कर दिया।

एहसानुल्लाह को अब घर से निकले तीन-चार साल हो गए थे। उसके माँ-बाप, भाइयों और रिश्तेदारों की तरफ़ से नामा और पैग़ाम सब बंद थे गोया वह उनकी तरफ़ से मर गया है। बटाला में उसके रिश्तेदार थे, लेकिन ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि वह “बेदीन” हो गया है उन्होंने उसकी तरफ़ रुख़ भी न किया। इस हालत में उसे ग़ालिब का शेर याद आता था,

> करते किस मुँह से हो ग़ुरबत की शिकायत ग़ालिब
> तुम को बेमेहरीए-याराने-वतन याद नहीं?

सबसे ज़्यादा उसे माँ की याद सताती थी जिसको वह हद से ज़्यादा प्यार करता था। वह उसे फ़रिश्ते से कम न समझता था और ज़िंदगी के आख़िर तक उसकी ज़िंदगी और नमूने के लिए ख़ुदा का शुक्र करता रहा। जहाँ ख़ुशी होती थी वहाँ उसका यह भी जी करता था कि माँ का मुँह देखे। ख़ुदावंद ने सच फ़रमाया था,

> यह मत समझो कि मैं दुनिया में सुलह-सलामती क़ायम करने आया हूँ। मैं सुलह-सलामती नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं बेटे को उसके बाप के ख़िलाफ़ खड़ा करने आया हूँ, बेटी को उसकी माँ के ख़िलाफ़ और बहू को उसकी सास के ख़िलाफ़। इनसान के दुश्मन उसके अपने घरवाले होंगे। जो अपने बाप या माँ को मुझसे ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपने बेटे या बेटी को मुझसे ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपनी सलीब उठाकर मेरे पीछे न हो ले वह मेरे लायक़ नहीं। जो भी अपनी जान को बचाए वह उसे खो देगा, लेकिन जो अपनी जान को मेरी ख़ातिर खो दे वह उसे पाएगा। (मत्ती 10:34–39)

लेकिन ख़ुदावंद ने यह भी फ़रमाया था,

> जिसने भी मेरी और अल्लाह की ख़ुशख़बरी की ख़ातिर अपने घर, भाइयों, बहनों, माँ, बाप, बच्चों या खेतों को छोड़ दिया है उसे इस ज़माने में ईज़ारसानी के साथ साथ सौ गुना ज़्यादा घर, भाई, बहनें, माएँ, बच्चे और खेत मिल जाएँगे। और आनेवाले ज़माने में उसे अबदी ज़िंदगी मिलेगी। (मरक़ुस 10:29–30)

एहसानुल्लाह ने इस वादे को अपने हक़ में सच पाया। बटाला में सब ईसाइयों के घर उसके लिए खुले थे। वह जहाँ जाता उसकी आवभगत होती। ख़ासकर बाबू सिंघा की कोठी उसका घर हो गया था जहाँ वह जिस वक़्त चाहता बेखटके चला जाता था। बाबू साहब एहसानुल्लाह के बाप थे, और उनकी अहलिया उसकी माँ जो उसकी हर तरह से ख़बरगीरी करती थीं। बाबू साहब के बेटे राजू और जोति एहसानुल्लाह को अपना भाई समझते थे, और उनकी बेटियाँ एहसानुल्लाह की बहनें थीं। बैरिंग साहब बाप की तरह उस पर शफ़क़त का हाथ रखते और वाइटब्रेख़्ट साहब उससे भाई की तरह बरताव करते थे। मिस टकर माँ की तरह उससे सुलूक करती थी, और हर छोटा-बड़ा उसकी इज़्ज़त और क़दर करता था। बेटमन भी उसे मिलने की ख़ातिर आ जाते और उसके हौसले और तसल्ली का बाइस होते थे। स्कूल के तालिब-इल्मों में वह हर-दिल-अज़ीज़ था, और हर लड़का उसके लिए अपनी जान देने को तैयार था। ग़रज़, एहसानुल्लाह की ज़िंदगी चारों तरफ़ मुहब्बत की फ़िज़ा में साँस ले रही थी। हर शख़्स उसे प्यार करता था। वह हर एक को प्यार करता था। नारोवाल के बजाए अब बटाला उसका वतन हो गया था।

एहसानुल्लाह को अकसर औक़ात बटाला से अमृतसर जाने का इत्तफ़ाक़ होता था। अमृतसर उन दिनों में ईसाई ईमान का गढ़ था जहाँ मिस ह्यूलट, राबर्ट क्लार्क, डाक्टर हेनरी मार्टिन क्लार्क, पंडित खड़क सिंघ, मौलवी इमादुद्दीन लाहिज़, बाबू रुलिया राम, रजब अली जैसे लोग जमात में शरीक थे। यह सब उसकी ख़ूब मेहमान-नवाज़ी में कोई कोताही नहीं करते थे। वह उनके पास बैठकर इंजील जलील के रुमूज़ सीखता, उनकी नसीहतों से फ़ैज़याब होता और उनकी सोहबत से अपने ईसाई ईमान में तरक़्क़ी करता गया। वह लोग भी उसके जोश और बेरिया ईमान से मुतअस्सिर हुए। यों उन सबमें बाहमी रिश्ताए-मुहब्बत बढ़ता गया। चुनाँचे एहसानुल्लाह ने मसीह की जमात की बिरादरी में अपने लिए एक मुस्तक़िल जगह बना ली। ज्यों-ज्यों महीने और साल गुज़रते गए मुहब्बत के यह रिश्ते बढ़ते और मज़बूत होते गए।

ख़ादिम बनने की ख़ाहिश

उन दिनों में मियाँ एहसानुल्लाह के चंद दोस्तों ने उन्हें मशवरा दिया कि आप सरकारी नौकरी इख़्तियार कर लें और स्कूल के काम को छोड़ दें। उन्होंने कहा कि आजकल इंट्रेंस पास आदमी मिलते कहाँ हैं? गवर्नमेंट ऐसे लोगों को जल्दी जल्दी तरक़्क़ी दे रही है। आपका रुतबा आला होगा। तनख़ाह निहायत माक़ूल होगी। पेंशन का भी इंतज़ाम होगा। आपको स्कूल के काम में न तो अच्छी तनख़ाह मिलेगी और न पेंशन। आपकी इज़्ज़त भी इतनी नहीं होगी। देखें बाबू सिंघा का लड़का राजू सरकारी नौकरी पर लगा है, और उम्मीद है कि वह किसी दिन एक्स्ट्रा असिस्टंत कमिश्नर हो जाएगा।

उन्होंने जवाब दिया, “मुझे दौलत और इज़्ज़त नहीं चाहिए बल्कि असल में मैं स्कूल में पढ़ाना भी नहीं चाहता।” जब अहबाब ने पूछा कि आख़िर आप क्या करना चाहते हैं तो उन्होंने जवाब दिया, “मैं अपनी ज़िंदगी इंजील की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ करना चाहता हूँ।”

एक दोस्त ने कहा, “आप देखते नहीं कि अब वाइटब्रेख़्ट साहब ने भी चूहड़ों को बपतिस्मा देना शुरू कर दिया है, और अब जमात में सियालकोट, दीनानगर और गुरदासपुर वग़ैरा से चूहड़ों की भरती होती जा रही है? अगर आप ख़ादिमुद्दीन बने तो बस चूहड़ों के पीर हो जाओगे।”

उन्होंने हँसकर कहा, मेरे अज़ीज़ भाई। अगर तुम चाहते हो कि बड़े आदमी बनो तो ख़ुदावंद के हुक्म को याद रखो,

> तुम जानते हो कि क़ौमों के हुक्मरान अपनी रिआया पर रोब डालते हैं, और उनके बड़े अफ़सर उन पर अपने इख़्तियार का ग़लत इस्तेमाल करते हैं। लेकिन तुम्हारे दरमियान ऐसा नहीं है। जो तुममें बड़ा होना चाहे वह तुम्हारा ख़ादिम बने और जो तुममें अव्वल होना चाहे वह सबका ग़ुलाम बने। क्योंकि इब्ने-आदम भी इसलिए नहीं आया कि ख़िदमत ले बल्कि इसलिए कि ख़िदमत करे और अपनी जान फ़िद्या के तौर पर देकर बहुतों को छुड़ाए। (मरक़ुस 10:42–45)

नारोवाल को वापसी

1889 में बेटमन की अहलिया इंग्लैंड में बीमार हुई, और वह गरमियों में उसके पास जाना चाहता था। उसने दरख़ास्त की कि एहसान यहाँ की जमात और तबलीग़ी काम को सँभाल ले ताकि मैं इतमीनान से इंग्लैंड जा सकूँ।

जब मियाँ साहब को यह ख़बर मिली तो उन्होंने ख़ुशी से अपना तबादला मंज़ूर कर लिया। अब ख़ुदा ने उन्हें न सिर्फ़ अपने रूहानी बाप और नारोवाल की जमात की ख़िदमत करने का मौक़ा दिया बल्कि अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और अज़ीज़ो-अक़ारिब को इंजील जलील का पैग़ाम सुनाने का भी मौक़ा बख़्शा।

मियाँ एहसानुल्लाह 1889 में अपनी अहलिया के साथ नारोवाल वापस आ गए। अपने अज़ीज़ वतन में वापस आकर उन्हें जो ख़ुशी नसीब हुई उसका हम अंदाज़ा कर सकते हैं। नारोवाल के दरो-दीवार से, उसकी गलियों से, उसके सिख, हिंदू, मुसलमान बाशिंदों से, लड़कपन के हमजमातों और साथियों से, ख़ाजगान के छोटों-बड़ों से मिलकर उन्हें ख़ुशी हुई। लेकिन सबसे ज़्यादा ख़ुशी उन्हें अपने बाप और ख़ासकर अपनी माँ से मुलाक़ात करके हुई। उनका पहलौठा बेटा ग्यारह बरस की जुदाई के बाद उनसे फिर मिला। पुराने ज़ख़म भर चुके थे। माज़ी की बातें भूल-बसर गईं और अब माँ, बाप, भाइयों, बहनों और रिश्तेदारों ने उन्हें वापस क़बूल कर लिया।

2 भाई रहमत अली

रहमत अली को शक आता है

एक रोज़ का ज़िक्र है। गरमियों के दिन थे। एहसानुल्लाह किसी काम के लिए इबादतगाह गए जो मुहल्लाए-ख़ाजगान में वाक़े थी। दोपहर का वक़्त था। जब काम हो चुका तो उनके दिल में ख़याल आया कि घर पास ही तो है। चलो सबको मिल आएँ। उन्होंने घर का किवाड़ खोला। सीढ़ियों पर चढ़कर आवाज़ दी, "भाभी।" घर के सब बच्चे माँ को "भाभी" बुलाया करते थे।

माँ ने अंदर से जवाब दिया, "एहसान, अंदर आ जाओ।"

वह अपनी माँ के पास बैठे। अपने भाई रहमत अली के बच्चों को गोद में लिया। अपने बुज़ुर्ग बाप के बारे में पूछा। मालूम हुआ कि वह दुकान पर चले गए हैं। फिर अपने मँझले और छोटे भाइयों के बारे में पूछा। जवाब मिला, "रहमत अली ऊपर की मनज़िल में है, और मोहसिन अली बाहर अपने हमजमातों के साथ पढ़ने गया हुआ है।"

यह सुनकर वह ऊपर की मनज़िल अपने भाई को देखने चले गए। वहाँ देखते क्या हैं कि रहमत अली सो रहा है। उसके एक तरफ़ क़ुरान खुला पड़ा है जबकि दूसरी तरफ़ किताबे-मुक़द्दस पड़ी है। चारपाई के नीचे क़लम-दवात और काग़ज़ हैं जिस पर कुछ नोट लिखे हैं। वह उलटे पाँव नीचे चले गए। उन्होंने कहा, "भाभी, रहमत अली को कहना कि आज रात खाना खाकर मेरे घर में आए।"

जब वह रात को खाने के बाद नमाज़ से फ़ारिग़ होकर आए तो दोनों भाई बैठ गए और बातें करने लगे। गुफ़्तगू के दौरान बड़े भाई ने कहा, "भाई जी, आज मैं आपको मिलने के लिए घर गया था। आप सो रहे थे। मैंने आपके आराम में ख़लल डालना मुनासिब न समझा और चला आया। लेकिन मैंने आपकी चारपाई पर किताबे-मुक़द्दस खुली पाई। क्या आप इन दिनों इसका मुतालआ कर रहे हैं?"

छोटे भाई ने बात टालनी चाही, लेकिन बड़े भाई के इसरार पर उन्होंने कहा कि यह एक लंबी कहानी है। जब आप ईसाई होकर घरबार छोड़कर नारोवाल से चले गए तो तमाम ख़ानदान का बोझ मेरे सर पर आ पड़ा जो पहले आपने उठाया हुआ था। बाप मसजिद में ज़्यादातर रहते थे। मोहसिन अली 14-साला लड़का स्कूल में पढ़ता था। मेरी अपनी

उम्र 17, 18 बरस की थी। गुज़ारा बड़ी मुश्किल से हो रहा था, क्योंकि छः-सात जानें थीं, और मैं अकेला कमानेवाला था। चुनाँचे जायदाद का कुछ हिस्सा गिरवी करके मैंने इस रक़म से बड़े पैमाने पर कारोबार करना शुरू कर दिया। दिन-रात की मेहनत-मशक़्क़त पर ख़ुदा ने बरकत दी। नौ-दस साल के अंदर मैं इतना सँभल गया कि न सिर्फ़ मैंने क़र्ज़ा उतार दिया और जायदाद वापस हासिल कर ली बल्कि मैं अच्छा ताजिर हो गया। चमड़े का कारोबार अच्छा चल पड़ा। मैं अमृतसर माल भेजने लगा और वहाँ से माल ख़रीदकर नारोवाल में अच्छे मनाफ़े पर बेचने लगा। इसके अलावा मैं कपड़े और नमक वग़ैरा में भी तिजारत करने लगा, और अब ख़ुदा के फ़ज़ल से हम सब बहुत ज़्यादा ख़ुशहाल हैं।

जब ख़ुदा ने मेरे कारोबार में बरकत दी तो मेरे दिल में ख़याल आया कि मुझे भी ख़ुदा की ख़िदमत करनी चाहिए, वरना यह एहसान-फ़रामोशी होगा। चुनाँचे मैंने 1887 में यह मुसम्मम इरादा कर लिया कि मैं अरबी ज़बान से ज़्यादा गहरी वाक़िफ़ियत हासिल करूँ ताकि क़ुरान शरीफ़ का सहीह मतलब ख़ुद समझ सकूँ और अपनी क़ौम के लोगों में वाज़ो-नसीहत अहसन तौर पर कर सकूँ।

उन दिनों में मौलवी हशमत अली साहब ख़ैरुल्लाहपुरी मुल्के-इराक़ से तालीम हासिल करके वापस आ गए थे। अब वह नारोवाल में ही रहते थे। मेरी तबीयत मुतजस्सिस थी, और मैं वायज़ों के हलक़े से वाबस्तगी रखता था। फ़ारसी की तालीम से फ़ारिग़ और अरबी की बनियादि तालीम से गुज़र चुका था। लेकिन यह तालीम ऐसे माहौल में हुई जो चारों तरफ़ से क़दामत-परस्ती और तक़लीद की चारदीवारी में घिरा हुआ था। चुनाँचे मैंने यह मौक़ा ग़नीमत समझा और उनसे कहा कि आप अरबी ज़बान और शिया मज़हब की बारीकियों को मालूम करने में मेरी मदद करें।

उन्होंने कहा, “तुम अरबी जानते ही हो। तुम अरबी का ज़्यादा इल्म हासिल करके क्या करोगे?”

तब मैंने अपना दिल खोलकर उनके सामने रख दिया। वह ख़ुश होकर कहने लगे कि वह मुझे ज़रूर पढ़ाया करेंगे और शिया मज़हब के दक़ीक़ मसायल की भी तालीम देंगे। चुनाँचे मैं अकसर उनकी ख़िदमत में ही रहने लगा और सिर्फ़ थोड़ा वक़्त अपनी तिजारत में सर्फ़ करता था। यह हाल तक़रीबन दो साल तक रहा।

मौलवी हशमत अली साहब हमारी क़ौम को अकसर वाज़ो-नसीहत किया करते थे। वह उमूमन आमदनी का पाँचवाँ हिस्सा देने पर बहुत ज़ोर देकर कहा करते थे कि पहले पाँचवाँ हिस्सा अदा करके अपने माल को पाक करो। मैं उनका शागिर्द था जिसको वह

बहुत प्यार करते थे, और हमारे हाँ अकसर उनकी दावत होती थी। मुझे यक़ीन था कि जो कुछ मौलवी साहब कहते हैं सब दुरुस्त और सहीह है। चुनाँचे मैं भी पाँचवें हिस्से के बारे में सरगरम था। एक साल बाप ने तक़रीबन दो सौ रुपए पाँचवें हिस्से के तौर पर उन्हें दे दिए।

कुछ अरसे के बाद चंद अर्ज़ देनेवाले मौलवी साहब के पास आए जो जिस्म के हट्टे-कट्टे मज़बूत और ख़ूब तवाना तनदुरुस्त मालूम होते थे। वह ख़ुशपोश और ज़ी-इज़्ज़त दिखाई देते थे। मौलवी साहब ने उन्हें पाँचवें हिस्से के उन रुपयों में से जो उनके पास जमा थे अच्छी रक़म दे दी। वह लेकर बड़े ख़ुश हुए और चले गए। इसके बाद फिर इसी क़िस्म के अर्ज़ देनेवाले मौलवी साहब के पास आते गए, और वह भी माक़ूल रक़में हासिल करके चले जाते थे। उनमें से मैंने न बीमार देखे और न ग़रीब, न यतीम, न बेवा और न मुसाफ़िर पाए। चंद महीनों के बाद मौलवी साहब नारोवाल से ख़ैरुल्लाहपुर चले गए और फिर वहीं ज़्यादा रहने लगे।

यह सूरते-हाल देख देखकर मेरे दिल में तरह तरह के वसवसे शुरू हो गए। मैंने सोचा कि हम लोग दुकानदार हैं। भारी बाल-बच्चेवाले भी हैं, मेहनतो-मशक़्क़त करके रोज़ी कमाते और बाल-बच्चों को पालते हैं। पाँचवें हिस्से का यह रुपया हमसे वसूल किया जाता है और ऐसे लोगों को दिया जाता है जो न कोई काम करते हैं न काज। अच्छे-भले, हट्टे-कट्टे, मोटे-ताज़े जिस्म के लोग होते हैं। मौलवी साहब से मालूम करना चाहिए कि यह कहाँ तक जायज़ है कि पाँचवें हिस्से का माल जफ़ाकश मेहनती लोगों से लेकर ऐसे लोगों को दिया जाए जो न मुहताज हैं और न बीमार, न यतीम हैं, न मसाकीन और न बेवाएँ हैं बल्कि हमसे बेहतर पोशाक पहनते हैं और ज़ी-इज़्ज़त नज़र आते हैं। इस सवाल पर मैंने बहुत ग़ौर किया और क़ुरान शरीफ़ को भी अच्छी तरह से पढ़ा। तब मुझ पर हक़ीक़त खुली कि क़ुरान शरीफ़ के मुताबिक़ लूट के माल में से पाँचवें हिस्से का अदा करना वाजिब है जबकि हमारा माल तो लूट का माल ही नहीं होता बल्कि मेहनत-मशक़्क़त की कमाई का माल होता है।

मैं इस सवाल पर कई दिन सोचता रहा। आख़िर एक बार जब जुमे का रोज़ क़रीब आया तो मैंने बाप से कहा, “यह सब जायदाद, दुकानें, घरबार जो है, सब आपका ही है। मैं भी आपका हूँ। मैं मौलवी हशमत अली साहब से पाँचवें हिस्से के मसले के बारे में बातचीत करना चाहता हूँ।”

उन्होंने फ़रमाया, “अच्छा है, ख़ैरुल्लाहपुर चले जाओ, जुमे की नमाज़ भी पढ़ आओ और इस मसले को भी दरियाफ़्त कर आओ।”

उस रोज़ चचा ग़ुलाम तक़ी मौज़ाख़ान से आया हुआ था जो ख़ैरुल्लाहपुर के नज़दीक है। बाप ने उससे ज़िक्र किया। उसने कहा कि बेहतर है वह मेरे साथ चल पड़े। वहाँ जुमे की नमाज़ भी पढ़ आए और अपने दिल के शुकूक को भी रफ़ा कर आए। चुनाँचे मैं उसके साथ चला गया। रात मैंने मौज़ाख़ान में बसर की, और सुबह मैं और चचा वहाँ से ख़ैरुल्लाहपुर चले गए।

जब सब लोग जुमे की नमाज़ पढ़कर चले गए तब मैंने मौलवी साहब से पाँचवें हिस्से के मसले के बारे में सवाल किए। उन्होंने कहा, “तुम ख़ुद जानते हो कि ख़ुम्स (पाँचवें हिस्से) की आयत क़ुरान में मौजूद है। यह एक इलाही हुक्म है जिसको टालना गुनाहे-अज़ीम है। यह आयत दसवें पारे के शुरू में है, और इसकी सहीह तफ़सीर यही है कि हर एक चीज़ में से पाँचवाँ हिस्सा देना हर दीनदार पर फ़र्ज़ है। क़दीम ज़माने से अब तक अहले-शिया देते चले आए हैं।”

मैंने सवाल किया, “जनाब, अगर क़दीम ज़माने से पाँचवें हिस्से का रिवाज चला आ रहा है तो यह बताएँ कि क्या हज़रत रसूलुल्लाह सलअम ने कभी लूट के माल के सिवा किसी में से पाँचवाँ हिस्सा लिया था?”

मौलवी साहब बहुत नाराज़ हुए और कहने लगे, “हम इस सवाल का जवाब फिर देंगे।”

मैंने अर्ज़ की, “आप अपने वाज़ो-नसीहत में पाँचवें हिस्से पर सालों से ज़ोर देते रहे हैं। मैंने सिर्फ़ दिल की तसल्ली के लिए यह सवाल किए हैं।”

इस पर वह बहुत मलामत करने लगे और कहने लगे, “तुम इतने सालों से मेरे शागिर्द रहे हो, और अब तुम मेरा यक़ीन नहीं करते। मेरा ख़याल था कि तुम बहुत अच्छे दीनदार शख़्स होकर दूसरों को वाज़ो-नसीहत किया करोगे, लेकिन मैं देखता हूँ कि शैतान तुम्हारे सर पर सवार हो रहा है, और तुम भी एहसान की तरह काफ़िर होने लगे हो।” इसके बाद वह तैश में आकर कहने लगे, “तुम नहीं जानते कि हम मुजतहिद हैं? हमारा क़ौल तुम्हारे लिए काफ़ी होना चाहिए। कोई ज़रूरत नहीं कि हम किताबों में से तलाश करके तुम्हारे सवालों का जवाब दें। हम ऐसे ही इराक़-अरब की ख़ाक छानकर आए हैं। हम आलिम और सैयिद हैं। सैयिदों को उम्मत पर फ़ौक़ियत हासिल है।”

मैंने पूछा, “क्या यह क़ुरान शरीफ़ में है?”

उन्होंने ग़ज़बनाक होकर कहा, “क़ुरान मजीद में ख़ुदा 23 सिपारा सूरा साफ़ात में फ़रमाता है,

> سَلَمٌ عَلَى اَل يَاسِينَ۔ (37:130)

तुम अरबी जानते हो। इसका तरजुमा करो। मैंने अर्ज़ की, “सलाम हो औलादे-रसूल के ऊपर।”

इसके बाद वह कहने लगे, “अब जाओ और ख़ुदा से अपने शक और शैतानी वसवसों के लिए माफ़ी माँगो। आइंदा जो कलाम हमारे मुँह से निकले उस पर पक्का यक़ीन रखो।”

मैं यक़ीन करके चचा ग़ुलाम तक़ी के हमराह वापस मौज़ाख़ान आ गया और हफ़ते के रोज़ नारोवाल पहुँचा।

इतवार के रोज़ मैंने कलामुल्लाह की तिलावत की। तिलावत के बाद मेरे दिल में ख़याल आया कि सूरा साफ़ात की आयत को देखूँ। जब मैंने इस आयत को निकाला तो वहाँ आयत को इस तरह लिखा पाया,

> سَلَمٌ عَلَى إِلْ يَاسِينَ

और अलफ़ाज़ के नीचे लिखे तरजुमे में यह अलफ़ाज़ थे, “सलामती हो, ऊपर इलयास के।” भाई जी, मैं क्या बताऊँ कि मेरा हाल क्या हुआ। मैं सन्नाटे में आ गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि ज़मीन मेरे पाँव तले से निकल गई है और मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मौलवी साहब का मैं बड़ा मोतक़िद था, और मेरे ख़ाबो-ख़याल में भी यह बात न आ सकती थी कि वह झूट बोलेंगे और क़ुरान पर तोहमत लगाएँगे। मेरे दिल में ख़याल आया कि मुमकिन है कि मौलवी साहब की फ़रमूदा आयत क़ुरान मजीद के किसी दूसरे हिस्से में मौजूद हो। चुनाँचे मैंने तमाम क़ुरान छान मारा। लेकिन तलाश और जुस्तजू के बावुजूद वह आयत कहीं न निकली।

भाई जी, मैं हर वक़्त हैरान और परेशान रहने लगा। मैं बहुत घबराहट में था और नहीं जानता था कि क्या करूँ। रह रहकर मुझे यह ख़याल सताता था कि मौलवी साहब ने यह क्या ग़ज़ब किया कि अपनी बात को क़ायम रखने के लिए क़ुरान तक को बदल दिया? न पेट भरकर खाना खाता और न सो सकता था। ग़म और रंज से भरा रहता था। हर वक़्त यही ख़याल आता कि मौलवी साहब ने यह क्या किया? और अगर ऐसे

आलिमे-मुजतहिद अपनी बात को मनवाने के लिए क़ुरान शरीफ़ की आयत को तबदील कर सकते हैं तो दूसरों की बातों पर क्या भरोसा किया जा सकता है? मैं शहर के बाहर चला जाता, क्योंकि आदमियों को देखकर मुझे वहशत-सी हो जाती थी।

एक शाम को मैं इन्हीं ख़यालों में ग़रक़ था। रोटी खाने को जी न करे, लुक़मा अंदर करूँ तो बाहर निकले। मैं दो-चार लुक़मे खाकर चारपाई पर पड़ गया, लेकिन नींद पास न फटकती थी। आधी रात के क़रीब मेरी आँख लगी। क्या देखता हूँ कि एक बुज़ुर्ग मेरे क़रीब आया और मुझे कहने लगा, “रहमत अली। तुझे क्या हुआ है? तू क्यों इस क़दर ग़मगीन और परेशानहाल हो रहा है?”

तब मैंने उसे अपनी तमाम कहानी सुनाई और कहा, “मेरा मौलवी साहब पर पूरा यक़ीन था, लेकिन अब उन्होंने अपनी बात रखने की ख़ातिर क़ुरान शरीफ़ की आयत को बदल दिया है। हाय, मैं क्या करूँ?” मैं बड़े ज़ोर से रोने लगा।

उस बुज़ुर्ग ने बड़े इतमीनान और दिलजमई से जवाब दिया, “तू पढ़ा-लिखा आदमी है। अरबी, फ़ारसी और उर्दू तू अच्छी तरह जानता है। क़ुरानो-हदीस से तू वाक़िफ़ है। तू किताबों को ख़ुद क्यों नहीं पढ़ता? तू इनसान पर क्यों ईमान रखता है? तुम किसी आदमी पर एतबार न करो। ख़ुद पढ़ो, सोचो, समझो और जो दुरुस्त है उस पर अमल करो।”

मेरी फ़रियाद और रोने की आवाज़ से वालिदैन जाग पड़े। भाभी मेरे पलंग आई और कहने लगी, “रहमत अली। क्या हुआ है? ऐसा क्यों करते हो?”

मैं भी उठ बैठा और अपने आँसू पोंछे। थोड़ी देर के बाद वह सोने चली गई और मैं फिर चारपाई पर लेट गया। उस बुज़ुर्ग की बातों पर सोचता सोचता सो गया।

जब मैं सुबह-सवेरे उठा तो मैंने मुसम्मम इरादा कर लिया कि मैं इस बुज़ुर्ग की सलाह पर अमल करूँगा। चाहे कोई शख़्स कुछ कहे मैं किसी बात को नहीं मानूँगा जब तक कि क़ुरान और मेरी अक़्ल इसकी गवाही न दे। मैंने वुज़ू किया और सुबह की नमाज़ के बाद दुआ की कि ऐ ख़ुदा, तू ही हर बात में मेरा हादी हो। तेरे सिवा मेरा कोई नहीं है। मैंने क़ुरान को नए सिरे से ग़ौरो-ख़ौज़ से पढ़ना शुरू किया। सूरा फ़ातिहा को ख़त्म करके सूरा बक़र को पढ़ना शुरू किया। जब मैं इस आयत पर आया,

> وَالَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِمَا أُنزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنزِلَ مِن قَبْلِكَ وَبِالْآخِرَةِ هُمْ يُوقِنُونَ۔
> और जो उस पर ईमान रखते हैं जो तुझ पर नाज़िल हुआ और जो तुझसे पहले नाज़िल हुआ और आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं। (2:4)

यह पढ़कर मैं ठिठक गया। मैंने अपने आपसे पूछा कि क्या मैं किताबे-मुक़द्दस पर क़ुरान की तरह ईमान रखता हूँ? मैं इस आयत के आगे न पढ़ सका। यह आयत मैंने बीसियों मरतबा पढ़ी थी लेकिन मेरे दिल में इस क़िस्म का ख़याल पहले कभी न आया था, क्योंकि आलिमों से यही सुना करता था कि मुरव्वजा किताबे-मुक़द्दस ख़ुदा का कलाम नहीं है। चुनाँचे मेरा भी यही ख़याल था कि यह किताबे-मुक़द्दस आदमियों की बनाई हुई है और इस क़ाबिल नहीं रही कि इस पर ईमान लाया जाए। लेकिन अब तो मैंने दिल में ठान रखा था कि मैं किसी आलिम और मौलवी की बात नहीं मानूँगा। मैं सिर्फ़ क़ुरान और अक़्ल की बातों पर ही चलूँगा, सब कुछ ख़ुद पढ़ूँगा, सब बातों पर ख़ुद सोचूँगा। मैं ख़ुदा से मदद पाकर समझने की कोशिश करूँगा और सिर्फ़ रास्ती पर अमल करूँगा। क्योंकि शेख़ सादी ने कहा है,

> راستی مُوجبِ رضائے خداست　　کس ندیدم کہ گُم شُد از رہِ راست۔
> रास्ती ख़ुदा की रज़ामंदी का सबब है
> मैंने किसी को भी नहीं देखा जो राहे-रास्त पर चलते हुए गुम हो गया है।

इस आयत को पढ़कर मेरे दिल में सख़्त कशमकश शुरू हो गई। पुराने ख़यालात में और नए ख़याल में सख़्त लड़ाई शुरू हो गई। मैंने अपने आपको बहुत मलामत की और कहा, “जिस किताब को तू आदमियों का कलाम ख़याल करता है उसे क़ुरान शरीफ़ ख़ुदा का कलाम फ़रमाता है।” मैंने उस घड़ी मान लिया कि जैसा मैं क़ुरान शरीफ़ पर ईमान रखता हूँ वैसा ही किताबे-मुक़द्दस पर ईमान रखूँगा। और जैसा मैं क़ुरान की तिलावत रोज़ाना करता हूँ उसकी भी तिलावत रोज़ाना करूँगा। मैं दोनों किताबों का निहायत ग़ौरो-ख़ौज़ से मुतालआ करूँगा।

भाई जी। आप यहाँ नहीं थे कि मैं आपसे मदद माँगता। अगर आप यहाँ होते तो मुझे इस क़दर परेशानी का सामना करना न पड़ता। और आप मेरी राहनुमाई भी कर सकते थे।

ख़ैर, मैंने क़ुरान मजीद को वहीं बंद कर दिया और उसी रोज़ किताबे-मुक़द्दस की एक जिल्द ख़रीदकर दोनों को पढ़ना शुरू कर दिया। ज्यों-ज्यों मैं दोनों का मुतालआ करता गया मुझ पर यह ज़ाहिर होता गया कि किताबे-मुक़द्दस के बहुत-से मक़ामात और क़िस्से क़ुरान में पाए जाते हैं और क़ुरान की आयात को समझने में तफ़सीरों से ज़्यादा मदद देते हैं। लेकिन मुझे दोनों किताबों में इख़्तिलाफ़ भी नज़र आने लगे। अब मैंने दो मोटी कापियाँ बनाईं। एक क़ुरान मजीद के लिए और दूसरी किताबे-मुक़द्दस के लिए बनाई। जिन आयतों और मक़ामों का आपस में मेल नहीं होता वह मैंने उन कापियों में दर्ज करनी शुरू कर दी हैं। जब आप आज दोपहर को घर आए थे तो मैं दोनों किताबों को पढ़ते पढ़ते सो गया था। अब मैंने आपके सामने तमाम हालात हरफ़ बहरफ़ बयान कर दिए हैं।

बड़ा भाई ख़ामोशी से छोटे भाई की बातें सुनता रहा। जब वह अपना क़िस्सा सुना चुके तो बड़े भाई कहने लगे, "भाई जी। मुझे आज आपसे बड़ी शर्म आती है। मैंने ईसाई होने के वक़्त यह ख़याल न किया कि मैं घरबार दुकान वग़ैरा का सारा बोझ आप पर लाद रहा हूँ। मेरी वजह से जो आपको तकलीफ़ पहुँची उसके लिए में माफ़ी माँगता हूँ। लेकिन अब आप ख़ुद समझ सकते हैं कि तालिबे-हक़ की राह में मुश्किलात का पहाड़ हाइल होता है, कि एक वक़्त ऐसा आता है जब उसे रिश्तेदारों की मुहब्बत और ख़ुदा में से एक को इख़्तियार करना पड़ता है। इंजील में लिखा है कि तुम ख़ुदा और दुनिया दोनों की ख़िदमत नहीं कर सकते। मैंने ख़ुदा की ख़िदमत इख़्तियार की, और मुझे यह नज़र आता है कि आपको भी ख़ुदा हक़ की जानिब बुला रहा है और आप अपने तरीक़े से ख़ुदा की तरफ़ आ रहे हैं। ख़ुदावंद ने फ़रमाया है कि सिराते-मुस्तक़ीम, हक़ और ज़िंदगी मैं हूँ। चुनाँचे हक़ की तलाश आपको अपने नजातदहिंदे के पास लाकर रहेगी। आप पंजगाना नमाज़ में सूरा अल-हम्द पढ़कर ख़ुदा से दुआ माँगते हैं कि वह आपको सिराते-मुस्तक़ीम पर चलाए। मैं हमेशा आपको अपनी दुआओं में ख़ुदा के हुज़ूर पेश करता रहूँगा। अगर मैं किसी वक़्त आपके मुतालए में काम आ सकूँ तो मुझे बताएँ ताकि मैं आपकी मदद करूँ। फ़िलहाल आप यह चंद किताबें पढ़ने के लिए ले जाएँ।"

यह कहकर वह उठे और छोटे भाई को मीज़ानुल-हक़ और असमारे-शीरीं वग़ैरा किताबें देकर कहा, "आपको इन किताबों के मुतालए से फ़ायदा पहुँचेगा। यह बातें कि किताबे-मुक़द्दस मुहर्रफ़ है इन मौलवियों की बनावटी बातें हैं।

> چوں ندیدند حقیقت رہِ افسانہ زدند۔
> चूँकि उन्हें हक़ीक़त नज़र नहीं आती थी इसलिए वह अफ़साने गढ़ते हैं।

क़ुरान से ऐसी बातों की तसदीक़ नहीं होती। इस क़िस्म की बातों से न क़ुरान में और न किताबे-मुक़द्दस में तहरीफ़ लाज़िम आती है। भाई जी। आपने ख़ुद तहक़ीक़ करने का जो रास्ता इख़्तियार किया है वह बेहतरीन रास्ता है। अगर किसी बात में मेरी ज़रूरत पड़े तो आप बिना हिचक मुझे बताएँ। मेरी दुआ है कि ख़ुदा आपको इस पुरख़ार रास्ते में बेख़ौफ़ होकर चलने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।" रात बहुत गुज़र गई थी, चुनाँचे दोनों भाई एक दूसरे से रुख़सत हुए।

शेख़ रहमत अली क़ुरान और किताबे-मुक़द्दस का ग़ौर से गहरा मुतालआ करते रहे। वह ज्यों-ज्यों मुतालआ करते गए उन्हें किताबे-मुक़द्दस की सदाक़त का यक़ीन होता गया। अब वह अपना ज़्यादा वक़्त किताबे-मुक़द्दस और ख़ासकर इंजील जलील के पढ़ने में सर्फ़ करने लगे।

ज़लज़ला और वबा

1905 का साल नारोवाल के लिए एक बड़ा मनहूस साल था। उस साल पंजाब बल्कि तमाम शिमाली हिंद में मार्च में सख़्त ज़लज़ला आया जिसने काँगड़ा के ज़िले से लेकर तमाम शिमाली हिंद में तबाही मचा दी। नारोवाल में कोई घर ऐसा न था जो गिरा न हो या जिसकी दीवारें शिकस्ता न हुई हों। ज़लज़ले के झटके सुबह से शुरू हुए और मुसलसल तमाम दिन जारी रहे। लोग अपने घरों से भाग निकले। उन्होंने वीरान मक़ामों में दरख़्तों के साय के नीचे पनाह ली। मुहल्लाए-ख़ाजगान बरबाद हो गया। हर शख़्स ख़ुदा से दुआ करने लगा।

शेख़ रहमत अली अंजुमने-शियाँ के सदर थे। उन्होंने तमाम मुहल्ले को ईदगाह में बुलाया। लोगों का बड़ा भारी मजमा इकट्ठा हो गया। वहाँ शेख़ साहब ने किताबे-मुक़द्दस में से यूनुस नबी की किताब पढ़कर सुनाई और फिर एक दिल हिला देनेवाला वाज़ किया। तमाम मजमा के दिल ख़ुदा की जानिब रुजू हो गए। उन्होंने निहायत फ़रोतनी के साथ दुआ की और तौबा की तरफ़ मायल होकर ख़ुदा से अपने गुनाहों की मग़फ़िरत के तालिब हुए।

अभी ज़लज़ले की हिरासानी ख़त्म न हुई थी कि ताऊन की वबा मुहल्लाए-ख़ाजगान में फैल गई। हर गली-कूचे के लोग मरने लगे। ईसाई आबादी से बाहर निकल गए। शेख़ रहमत अली ने अंजुमन के सदर की हैसियत से सबको यही करने की सलाह दी और फिर ईदगाह में तमाम शियों का मजमा इकट्ठा किया। इस मौक़े पर उन्होंने तक़रीर की जिसमें किताबे-मुक़द्दस से जा बजा हवाले देकर अंबिया के नसियतें और तौरात की किताब इस्तिसना के हवालजात पढ़े। उन्होंने ख़ुदा से दुआ की कि वह सब पर रहम करे, सबके गुनाह माफ़ फ़रमाए और वबा को जो नारोवाल के लोगों की वाजिबी सज़ा के तौर पर भेजी गई है उनके दरमियान से दूर करे।

ख़ुदा ने अपना फ़ज़ल किया। चंद दिनों के अंदर ताऊन की वबा ख़त्म हो गई। शेख़ साहब की अहलिया भी इस नामुराद मरज़ में गिरिफ़्तार होकर उन दुआओं के सबब से सेहतयाब हो गईं। शेख़ साहब लिखते हैं,

> मेरी बीवी सख़्त बीमार हो गई। ऐसा मालूम होता था कि वह कोई दम की मेहमान है। हमने बरकत अली को बटाला के स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया था, और वह उसकी जुदाई में भी तड़प रही थी। मैंने दुआ माँगी कि ऐ ख़ुदावंद, मैं तेरी मिन्नत करता हूँ कि तू अपने मसीह के नाम की ख़ातिर इसको शफ़ा बख़्श। दुआ के बाद उसे क़दरे आराम हो गया। उसकी बेहोशी दूर हो गई। वह बातचीत करने लगी, और मैंने ख़ुदा का शुक्र अदा किया। चंद दिनों के बाद उसकी कमज़ोरी भी ख़त्म हो गई, और उसने ख़ुदा से नई ज़िंदगी पाई।

अपने ईमान का अलानिया इक़रार

ज़लज़ले के झटकों और ताऊन की वबा ने शेख़ साहब और उनकी रफ़ीक़ाए-हयात के दिलों में इस दुनिया की नापायदारी और दौलत की कममायगी का एहसास बहुत तेज़ कर दिया। नतीजे में शेख़ रहमत अली ज़्यादा वक़्त किताबे-मुक़द्दस के मुतालए में सर्फ़ करने लगे और दुकान में सिर्फ़ उतना कारोबार करते जिससे उनके मुतालए में हर्ज वाक़े न होता। शेख़ साहब लिखते हैं,

> किताबे-मुक़द्दस के मुतालए में मुझे अजब लज़्ज़त आने लगी। मैं हर वक़्त इसी को पढ़ने लगा। एक रोज़ मैं किताबे-मुक़द्दस का मुतालआ कर रहा था कि मेरी

बीवी जो अनपढ़ है मुझे कहने लगी, “आप मुझसे कभी बात नहीं करते। जब देखती हूँ, बस आप हैं या यह किताब है।”

मैंने जवाब दिया, “हाँ, बोलो। क्या बात है? तुम बेशक बात करो।”

उसने कहा, “बात क्या दीवारों से करूँ? यह किताब तो आपके मुँह के सामने है।” और फिर बड़े जोश में आकर कहने लगी, “जी करता है कि इस किताब को जलाकर राख में मिला दूँ। यह किताब है या आप हैं?” यह कहकर मेरे हाथ से किताबे-मुक़द्दस छीनने लगी।

मैंने कहा, “इस किताब को इज़्ज़त से हाथ लगाओ। यह ख़ुदा का कलाम है।”

उसने घबराकर कहा, “क्या यह क़ुरान शरीफ़ है?”

मैंने जवाब दिया, “नहीं, यह किताब क़ुरान नहीं है। यह किताबे-मुक़द्दस है जो ख़ुदा का सच्चा कलाम है।”

उसने पूछा, “तो क्या क़ुरान ख़ुदा का कलाम नहीं है?”

मैंने जवाब दिया, “मेरा ईमान तो यह है कि सिर्फ़ यही किताब ख़ुदा का सच्चा और इलहामी कलाम है।”

उसने कहा, “अगर आपका यही ईमान है तो मुझे भी इसमें से सुनाया करें ताकि मुझे भी तो कुछ पता लगे।”

मैंने ख़ुदा का शुक्र किया और अपनी बीवी को ख़ुदावंद मसीह की ज़िंदगी और तालीम, उसकी सलीबी मौत और क़ब्र में से तीसरे रोज़ जी उठने का हाल सुनाता रहा। मैं हर शाम उसे किताबे-मुक़द्दस के बुज़ुर्गों की कहानियाँ और अंबिया के कारनामों का हाल पढ़कर सुनाया करता था।

सुबह के वक़्त मैं अपने कारोबार को चला जाता और फ़राग़त का वक़्त क़ुरान और किताबे-मुक़द्दस के मुवाज़ने और मुक़ाबले में सर्फ़ करता था। जब मैं अपने आमाल की तरफ़ नज़र करता तो मेरे गुनाह मेरे सामने आ जाते। नमाज़ के वक़्त जब मैं काबा की जानिब रुख़ करता तो ग़ालिब का शेर मुझे याद आता

> काबा किस मुँह से जाओगे ग़ालिब
> शर्म तुमको मगर नहीं आती?

लेकिन मैं अपने दिली ख़यालात दूसरों पर अलानिया ज़ाहिर नहीं करता था, क्योंकि मैं लोगों से डरता था। ज़ाहिर में इस्लामी रुसूम का पाबंद था, लेकिन

बातिन में मेरा ईमान इंजील जलील पर क़ायम था। जब मेरे दिल में कशमकश होती तो मुझे ख़ुदावंद मसीह के क़ौल से तसल्ली हो जाती कि

> जो हमारे ख़िलाफ़ नहीं वह हमारे हक़ में है। (मरक़ुस 9:40)

मैं शिया था, इसलिए मुझे तक़िया यानी ज़ुल्म की वजह से अपना अक़ीदा छुपाने की इजाज़त थी। कई बरस तक यह बातें मेरे दिल को ग़लत तसल्ली देती रहीं।

एक रात का ज़िक्र है मैं अपनी बीवी को इंजील मत्ती का दसवाँ बाब सुना रहा था। मैं इन आयात पर आया,

> उनसे ख़ौफ़ मत खाना जो तुम्हारी रूह को नहीं बल्कि सिर्फ़ तुम्हारे जिस्म को क़त्ल कर सकते हैं। अल्लाह से डरो जो रूह और जिस्म दोनों को जहन्नुम में डालकर हलाक कर सकता है। क्या चिड़ियों का जोड़ा कम पैसों में नहीं बिकता? ताहम उनमें से एक भी तुम्हारे बाप की इजाज़त के बग़ैर ज़मीन पर नहीं गिर सकती। न सिर्फ़ यह बल्कि तुम्हारे सर के सब बाल भी गिने हुए हैं। लिहाज़ा मत डरो। तुम्हारी क़दरो-क़ीमत बहुत-सी चिड़ियों से कहीं ज़्यादा है।
>
> जो भी लोगों के सामने मेरा इक़रार करे उसका इक़रार मैं ख़ुद भी अपने आसमानी बाप के सामने करूँगा। लेकिन जो भी लोगों के सामने मेरा इनकार करे उसका मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने इनकार करूँगा।
>
> यह मत समझो कि मैं दुनिया में सुलह-सलामती क़ायम करने आया हूँ। मैं सुलह-सलामती नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं बेटे को उसके बाप के ख़िलाफ़ खड़ा करने आया हूँ, बेटी को उसकी माँ के ख़िलाफ़ और बहू को उसकी सास के ख़िलाफ़। इनसान के दुश्मन उसके अपने घरवाले होंगे।
>
> जो अपने बाप या माँ को मुझसे ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपने बेटे या बेटी को मुझसे ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपनी सलीब उठाकर मेरे पीछे न हो ले वह मेरे लायक़ नहीं। जो भी अपनी जान को बचाए वह उसे खो देगा, लेकिन जो अपनी जान को मेरी ख़ातिर खो दे वह उसे पाएगा। (मत्ती 10:28–39)

मेरी बीवी ने इनका मतलब पूछा। मैं उसे इन आयात का मतलब समझा रहा था, लेकिन बातिन में मेरा दिल मुझे मलामत कर रहा था। तब उसने मुझसे कहा, "अगर यह बात ठीक है तो हम सबको हज़रत ईसा के पैरोकार हो जाना चाहिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं नहीं चाहता कि अपनी औलाद पर जबर करूँ। सब बच्चों की मँगनी हो चुकी है। उनका ब्याह कर देंगे फिर देखा जाएगा।"

मेरी बीवी ने कहा, "औलाद से ज़्यादा प्यारी क्या चीज़ हो सकती है? यह किस तरह हो सकता है कि हम ख़ुद तो सच्चाई का पीछा करके बहिश्त में दाख़िल हों और अपनी औलाद को मुसलमान रहने दें और उन्हें बहिश्त से महरूम रखें? आप ख़ुदा को क्या जवाब देंगे?"

उसकी यह बात सुनकर मैं तमाम रात जागता रहा। मुझे अपना मुस्तक़बिल तारीक नज़र आने लगा। मैंने निहायत दिलसोज़ी से ख़ुदा से दुआ माँगी कि वह मेरी हिदायत करे और मुझे इस तारीक रास्ते में अपना नूर दिखाए ताकि मैं जान सकूँ कि मुझे अब क्या क़दम उठाना चाहिए। मैंने जवाब मिलने के लिए इंजील खोली तो मेरी नज़र इस आयत पर पड़ी,

> अपनी किसी भी फ़िकर में उलझकर परेशान न हो जाएँ बल्कि हर हालत में दुआ और इल्तिजा करके अपनी दरख़ास्तें अल्लाह के सामने पेश करें। ध्यान रखें कि आप यह शुक्रगुज़ारी की रूह में करें। (फ़िलिप्पियों 4:6)

यह पढ़कर मैं दुआ में मशग़ूल रहा।

1906 जब क्रिसमस की छुट्टियाँ हुईं तो बरकत अली बटाला से आया। मैंने दो-चार बार बहुत कोशिश की कि उसे अपने दिली राज़ से आगाह करूँ, लेकिन मेरा हौसला न पड़ता था। क्योंकि वह ईसाई ईमान का जानी दुश्मन था। अगरचे स्कूल में वह बचपन से हर साल किताबे-मुक़द्दस का इनाम हासिल किया करता था तो भी इंजील के मुनादों को बाज़ार में बहुत तंग किया करता था। बल्कि एक बार तो उसने घर में इंजील भी जला दी थी।

इस बार जब वह घर आया तो वह बड़ी ख़ुशी से बताने लगा, "अगरचे मैंने किताबे-मुक़द्दस का इनाम फिर हासिल किया है लेकिन अपने हैड-मास्टर को इंजील के क्लास में सख़्त तंग किया करता हूँ। सवालात की बौछाड़ से मैं उसका दम नाक में कर देता हूँ।"

> यह बातें सुनकर मैं और मेरी बीवी एक दूसरे का मुँह देखने लगे, और मैंने उसे कुछ न कहा। छुट्टियों के बाद वह वापस स्कूल में चला गया।
>
> जब 1907 का शुरू हुआ तो मेरी बीवी ने फिर मुझसे तक़ाज़ा करके कहा, “जब आपका ईमान है कि मसीह ही नजात देता है तो हम क्यों अपनी औलाद समेत हज़रत ईसा के पैरोकार न हो जाएँ?” चुनाँचे दुआ के बाद हमने यही मुनासिब ख़याल किया कि हम सब अल-मसीह के पैरोकार हो जाएँ और बरकत अली को ख़ुदा पर छोड़ दें। एक रोज़ मैं एक मिस साहबा को राह में मिला और उससे कहा कि आप हमारे घर आया करें और हमारे बच्चों को पढ़ाया करें। इस पर वह हमारे घर आकर हमारी दोनों लड़कियों को पढ़ाने लगी। जब बिरादरी के लोगों ने देखा कि मिस साहबा हमारे घर में इंजील पढ़ाती है तो तमाम मुहल्ले में खलबली मच गई और गपें शुरू हो गईं।

रहमत अली को नज़र आ रहा था कि बाप-दादा के अक़ीदों को छोड़ने का नतीजा क्या होगा। जहाँ तक दुनिया का ताल्लुक़ है ज़िंदगी एक बोझ हो जाएगी जिसको उठाकर काँटों के जंगल में चलना पड़ेगा। और काँटे भी बबूल के, जो तलवों में चुभकर उन पाँव को जो अब तक गोया मख़मल के फ़र्श पर चलते रहे थे, ज़ख़मी करते रहेंगे। लेकिन सच्चे अक़ीदे की राहत और गुनाहों से नजात का आराम कोई मोल महँगा सौदा न था।

मौरूसी और रिवायती अक़ीदों की चारदीवारी सिर्फ़ तक़लीद ही की बुनियादों पर मज़बूती से क़ायम रहती है। जब यह बुनियादें हिल जाती हैं तो साथ ही सुकून भी हिल जाता है। मुतलाशी आराम तब मिलता है जब वह सच्चाई को हासिल करता है। लेकिन इस मनज़िल तक पहुँचने से पहले एक पुरख़ार राह तय करनी पड़ती है।

वह ऐसे ख़ानदान के चशमो-चराग़ थे जो इस दर्जा कट्टर और बेलचक था कि बाल बराबर भी इधर-उधर होना कुफ़र और ज़ंदक़ा समझता था। लेकिन उन्होंने अब इस सख़्ती और जमूद से आज़ादी पा ली थी। अब दरमियानी मनज़िलों में रुकना भी नामुमकिन था। अब दीनी सख़ती उनके और ख़ुदा के दरमियान हाइल नहीं हो सकती थी। आख़िर यह ज़िंदगी चंद-रोज़ा है और यह दुनिया फ़ानी है।

> आ जाए ऐसे जीने से अपना तो जी भी तंग
> आख़िर जिएगा कब तलक ऐ ख़िज़र?

वह रूहानी ज़िंदगी और ख़ुदा की क़ुरबत के ख़ाहिशमंद थे। आख़िर उनके बाप-दादा की दीनी तालीम का मक़सद भी तो यही था। और क्या ख़ूब कहा गया है कि

> بہرِ یک گُل زحمتِ صد خار می باید کشید
> एक गुलाब की ख़ातिर सौ ख़ारों की ज़हमत उठानी पड़ती है।

उनकी क़ौम के अफ़राद आपस में उनके बारे में चर्चा करने लगे। बाज़ कहते थे कि नहीं, वह अंजुमने-शियाँ के सदर हैं। उन्हें तिजारत में कोई ख़सारा नहीं पड़ा। वह ईसाई क्यों होने लगे? बाज़ कहते थे कि वह अपने वाज़ों में और नसीहतों में क़ुरान की बातें कम करते हैं लेकिन किताबे-मुक़द्दस के नबियों की किताब का हवाला ज़्यादा देते हैं। ग़रज़ जितने मुँह उतनी बातें। आख़िर हकीम मुहम्मद वारिस जो उनके मुख़लिस क़रीबी दोस्त और रिश्तेदार थे उनके पास आए ताकि कुल हालात का जायज़ा लें। शेख़ रहमतुल्लाह लिखते हैं,

> उन्होंने मुझसे पूछा, “यह अफ़वाह जो हर जगह उड़ रही है, इसकी तह में क्या हक़ीक़त है?”
>
> मैंने जवाब दिया, “अगर आपका मतलब है कि क्या मैं ईसाई होना चाहता हूँ तो यह बात दुरुस्त है कि मैं मसीह पर ईमान रखता हूँ।”
>
> उन्होंने कहा, “अच्छा मैं रात को आऊँगा और फिर आराम से गुफ़्तगू करेंगे और कोई हमारी बातों में ख़लल भी न डालेगा।”
>
> वह रात को आए, और हम दोनों में आधी रात तक क़ुरानो-इंजील के मुख़्तलिफ़ पहलुओं पर गुफ़्तगू होती रही। तब उन्होंने रुख़सत माँगी और कहा, “इंशाल्लाह मैं कल रात को फिर आऊँगा और हर बात पर तफ़सील से अपने ख़यालात का तबादला करेंगे।”
>
> जब वह फिर रात को आए तो हम दोनों क़ुरान और किताबे-मुक़द्दस लेकर बैठ गए। गुफ़्तगू के शुरू में मैंने उनसे कहा, “पहले हम ख़ुदा से ख़ुलूसदिली से दुआ करें कि ख़ुदा हम दोनों की राहनुमाई करे और हक़ की तलाश के सिवा हमारे दिलों में कोई ख़याल इस वक़्त जगह न पाए। तब ख़ुदा हमको ग़ौर करने की तौफ़ीक़ देगा और हम ठीक मालूम कर सकेंगे कि सीधी राह कौन-सी है।” हमने दुआ के लिए दोनों हाथ ऊपर उठाए और दुआ की कि या इलाहल-आलमीन, तू हमारी आँखों को खोल। फिर हम निहायत संजीदगी से रात-भर गुफ़्तगू करते रहे।

मुर्ग़ की बाँग पर वह उठ खड़े हुए और कहने लगे, “मैं अब यह तसलीम करता हूँ कि इंजील कलामे-इलाही है और आप रास्ती की तलाश करके इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि ईसाई दीन रास्ती पर है। मेरा भी आपसे बहुत बातों में इत्तफ़ाक़ नज़र आता है। लेकिन मैं अभी यह कहने के लिए तैयार नहीं हूँ कि क़ुरान ख़ुदा का कलाम नहीं है जब तक मैं भी आपकी तरह ख़ूब अच्छी तरह से पता न कर लूँ।” इतने में सुबह का सितारा नमूदार हो गया और वह घर चले गए। इसके बाद हम हर रोज़ शाम के वक़्त बाग़ की तरफ़ सैर को निकल जाने लगे और इस्लाम और ईसाई दीन के मुख़्तलिफ़ मसायल पर तबादलाए-ख़यालात किया करते थे।

हकीम मुहम्मद वारिस मुझे बताया करते थे,

एक दिन हम दोनों तक़रीबन शाम को 5 बाग़ की तरफ़ निकल गए और हसबे-दस्तूर इस्लाम और ईसाई ईमान पर बातें करते रहे। जब मैंने देखा कि शेख़ साहब का इंजील पर ईमान पक्का है और वह किसी हालत में भी ईसाई दीन से नहीं हटेंगे तो मैंने उन्हें कहा कि भाई जी, आपका मौजूदा रवैया दुरुस्त नहीं है। क़ुरान की रू से यह रवैया मुनाफ़क़ाना है, और इंजील की रू से आप इसको किसी सूरत में भी जायज़ क़रार नहीं दे सकते। आप अपनी दो टाँगें दो कश्तियों में जो मुख़ालिफ़ सिम्तों को जा रही हों, रखकर दरिया पार नहीं कर सकते। अब वक़्त आ गया है कि आप या तो इस्लाम के फ़रमाँबरदार होकर रहें या ईसाई दीन को अलानिया इख़्तियार करके मसीह का सबके सामने इक़रार करें जैसा भाई एहसान ने किया था।

इस पर वह चंद लमहों के लिए ख़ामोश हो गए। मैं उनकी तरफ़ देख रहा था। अचानक वह थर्राकर उठे और सख़्त काँपने लगे। अगरचे अभी गरमी का मौसम न था लेकिन उनके रोएँ रोएँ से पसीना टपकने लगा। उनकी हालत मुतग़ैयिर हो गई। उनके आँसू बहने लगे और निहायत बेक़रारी की हालत में उन्होंने ढाएँ मारकर कहा, “हाय, मुझसे मसीह का इनकार नहीं हो सकता। उसने भी फ़रमाया है कि

> जो भी लोगों के सामने मेरा इक़रार करे उसका इक़रार मैं ख़ुद भी अपने आसमानी बाप के सामने करूँगा। लेकिन जो भी लोगों के सामने मेरा इनकार करे उसका मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने इनकार करूँगा। (मत्ती 10:32–33)

और उसका रसूल भी कहता है,

> अगर तू अपने मुँह से इक़रार करे कि ईसा ख़ुदावंद है और दिल से ईमान लाए कि अल्लाह ने उसे मुरदों में से ज़िंदा कर दिया तो तुझे नजात मिलेगी। (रोमियों 10:9)

मैंने उन्हें कहा, "बस, फिर तो मामला साफ़ है।"

उन्होंने जवाब दिया, "अच्छा, अब मैं सबके सामने अलानिया इक़रार करूँगा कि मेरा ईमान मसीह पर है।"

मैंने उन्हें हौसला दिलाकर तसल्ली दी और कहा, "चाहे तमाम दुनिया आपके ख़िलाफ़ हो जाए मैं कभी आपके और आपके ख़ानदान के ख़िलाफ़ नहीं हूँगा। मैं आपका हमेशा मुख़लिस दोस्त बनकर रहूँगा और इंशाल्लाह आपका साथ दूँगा। यह मेरा वादा है।"

शेख़ रहमतुल्लाह लिखते हैं,

जब हम दोनों शहर की जानिब वापस आए तो उसने मेरे रिश्तेदारों को ख़बर दी कि मैं अलानिया बपतिस्मा पाकर हज़रत ईसा का पैरोकार होना चाहता हूँ। यह ख़बर आनन-फ़ानन मुहल्ले के लोगों में फैल गई। अगले रोज़ मेरे तीन रिश्तेदारों ने मुझे पैग़ाम भेजा कि हम तीनों आज रात आपके पास आएँगे। जब शाम हुई तो मेरा दिल अंदर ही अंदर बैठा जा रहा था। बेक़रारी और बेचैनी ने मुझे चारों तरफ़ से घेर लिया। मेरी हालत तहो-बाला होने लगी। तब मैं उठा और घर की छत पर जाकर ख़ुदा के हुज़ूर गिड़गिड़ाकर दुआ माँगने लगा कि "ऐ बेचारगान के वाली। इस वक़्त तू मेरा चारा कर। मुझे ताक़त और क़ुव्वत दे। ऐ मसीह, तूने कहा है कि

> तुम्हारा दिल न घबराए। तुम अल्लाह पर ईमान रखते हो, मुझ पर भी ईमान रखो। (यूहन्ना 14:1)

अब मैं तुझ पर ही ईमान ले आया हूँ। तू मुझे अपना इतमीनान बख़्श। मैं लाचार हूँ। तू मेरी मदद कर। तू मेरी ज़बान को ले और इसके ज़रीए आज रात तू ही इन लोगों से कलाम कर।"

मैं देर तक औंधा पड़ा रहा। दुआ के बाद मेरे दिल में अजीब इतमीनान पैदा हो गया। जब मैं नीचे उतरा तो मेरे रिश्तेदार आ गए थे। मैंने क़ुरान और किताबे-

मुक़द्दस को अपने पास रख लिया। चराग़दान पर दिया रखा और हुक़्क़ा उनके सामने पेश किया। छुटते ही एक ने यह सवाल किया, “अगर तौरात और इंजील सब ख़ुदा का कलाम हैं तो जो चीज़ें तौरात में हराम हैं वह ईसाई दीन में क्यों जायज़ क़रार दी गई हैं?”

मैंने क़ुरान लिया और तीसरे पारा में सूरा इमरान की 50 आयत निकालकर उनके रूबरू रख दी जिसमें मसीह का क़ौल लिखा है,

> وَمُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ التَّوْرَاةِ وَلِأُحِلَّ لَكُم بَعْضَ الَّذِي حُرِّمَ عَلَيْكُمْ ۚ وَجِئْتُكُم بِآيَةٍ مِّن رَّبِّكُمْ فَاتَّقُوا اللَّهَ وَأَطِيعُونِ-
> और मुझसे पहले जो तौरात (नाज़िल हुई) थी उसकी तसदीक़ भी करता हूँ और (मैं) इसलिए भी (आया हूँ) कि बाज़ चीज़ें जो तुम पर हराम थीं उनको तुम्हारे लिए हलाल कर दूँ और मैं तो तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से निशानी लेकर आया हूँ तो ख़ुदा से डरो और मेरा कहा मानो।

इस आयत पर चंद मिनटों के लिए बहस होती रही। फिर मैंने कहा, “भाइयो, यह जुज़वी बातें छोड़ो और किताबे-मुक़द्दस की असल बुनियादी बातों पर गुफ़्तगू करो।”

उन्होंने कहा, “जब किताबे-मुक़द्दस मुहर्रफ़ है और क़ाबिले-एतबार ही नहीं रही तो हम इसकी सनद किस तरह क़बूल कर सकते हैं?”

मैंने क़ुरान में से वह तमाम आयात निकालकर उनके सामने रख दीं जिनमें क़ुरान बार बार कहता है कि वह किताबे-मुक़द्दस की तसदीक़ करता है और उसे इमाम, नूर और हिदायत क़रार देकर कहता है कि हर मोमिन के लिए लाज़िम है कि इस पर ईमान रखे।

उन्होंने कहा, “यह बातें असल तौरात और इंजील के बारे में लिखी हैं जो तहरीफ़ होने से पहले अहले-किताब के हाथों में थीं।”

मैंने जवाब दिया, “हज़रत ईसा मसीह के सवा छः सौ साल से ज़्यादा अरसे के बाद यह बातें क़ुरान में लिखी गईं, और इसके सवा छः सौ साल के अरसे में तौरातो-इंजील हज़ारों बार हर सदी और हर मुल्क में नक़ल होती रही। इन क़दीम सदियों के नुसख़े अब तक मौजूद हैं जो मौजूदा किताबे-मुक़द्दस के मुताबिक़ हैं। इसके अलावा किताबे-मुक़द्दस के सहायफ़ का तरजुमा बहुत-से मुल्कों की

ज़बानों में इन सवा छः सौ साल में हुआ था। उन क़दीम तरजुमों के नुसख़े भी मौजूद हैं जो मौजूदा किताबे-मुक़द्दस के मुताबिक़ हैं और साबित करते हैं कि इस किताबे-मुक़द्दस में जो आपके सामने पड़ी है किसी क़िस्म की तहरीफ़ वाक़े नहीं हुई।”

उन्होंने पूछा कि आपको इन नुसख़ों का इल्म कैसे हो गया?

तब मैंने उन्हें फ़ैंडर की किताब मीज़ानुल-हक़ दिखाई जो भाई एहसानुल्लाह ने बहुत साल हुए मुझे मुतालए के लिए दी थी। बहस सारी रात जारी रही। जब मुर्ग़ ने बाँग दी तो वह अपने घरों को रुख़सत हो गए। लेकिन यह कहते गए कि अगर आप अपने इरादे से बाज़ न आए तो आपका भाई एहसान से भी ज़्यादा बुरा हाल होगा। क्योंकि वह तो ग़ैरशादीशुदा थे, और आप बीवी-बच्चोंवाले हैं। आप न सिर्फ़ अपने रिश्तेदारों को खो बैठेंगे और बिरादरी से ख़ारिज किए जाएँगे बल्कि आप और आपके बच्चे भूकों मरेंगे। आपसे कोई शख़्स सौदा नहीं लेगा और न किसी क़िस्म का वास्ता रखेगा। क्या आपको फ़ारसी का मिसरा याद नहीं कि

> روز و شب عربده با خلقِ خدا نتواں کرد
>
> तू दिन-रात ख़ुदा के लोगों से लड़ नहीं सकता

मैंने जवाब दिया,

> عشق از ایں بسیار کردست و کند
>
> इश्क़ ने इससे ज़्यादा किया है और करता है

उन्होंने कहा, याद रखो कि

> مردِ آخربین مبارک بندہ ایست
>
> अंजाम पर नज़र रखनेवाला मुबारक है

मैंने कहा, “तब ही तो मुझे आख़िरत का ख़याल दामनगीर है। और मैं दुनिया को तर्क कर रहा हूँ।”

उन्होंने कहा, “आख़िर इसका अंजाम क्या होगा?”

मैंने जवाब दिया,

> کس نداند کہ منزل گہ مقصود کجاست   ایں قدر ہست کہ بانگِ جرسے مے آید
> कौन नहीं जानता कि मनज़िले-मक़सूद कहाँ है?
> यों है कि घंटे की आवाज़ आती है।

वह कहने लगे, “आप अभी माशाल्लाह जवान हैं। सारी उम्र आपके सामने पड़ी है। क्या इसको रोते ही गुज़ारोगे?”

मैंने मुसकराकर जवाब दिया

> हस्ती से अदम तक नफ़से-चंद की है राह
> दुनिया से गुज़रना, सफ़र ऐसा है कहाँ का?

बपतिस्मा और अज़ीज़ों का दबाव

शेख़ रहमत अली ने अप्रैल 1907 के शुरू में अपने भाई एहसानुल्लाह को खत लिखकर तमाम हालात की इत्तला दी। यह भी बताया कि अब मैं मसीह का अलानिया इक़रार करके बपतिस्मा पाना चाहता हूँ।

यह खत पाते ही एहसानुल्लाह नारोवाल की जानिब चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वह सीधे अपने आबाई मकान को गए और भाई से बग़लगीर हुए। उन्हें देखकर रहमत अली के दिल को तसल्ली हुई। बड़े भाई की मौजूदगी ने उन्हें हौसला दिया। मियाँ साहब उनके पास छः हफ़्ते रहे और उनके ईमान को तक़वियत देते रहे। उन्होंने क़ौम के बुज़ुर्गों और रिश्तेदारों से मिलकर उन्हें बहुतेरा समझाया, लेकिन वह एक न माने। हर तरफ़ से धमकियों और लान-तान की आवाज़ें आ रही थीं। उनके भाई ने धमकियों के जवाब में कहा,

> ओखली में सर दिया तो धमकियों से क्या डर?

1907 में ईदे-पंतिकुस्त के रोज़ शेख़ रहमत अली ने अपनी बीवी, दो बेटों और दो बेटियों समेत अपने भाई एहसानुल्लाह के हाथों से बपतिस्मा पाया। उनका ईसाई नाम रहमतुल्लाह रखा गया। बपतिस्मे का पाना था कि चारों तरफ़ से मुसीबतों का पहाड़ उन पर टूट पड़ा। अपने यगाने सब बेगाने हो गए। बिरादरी ने उन्हें ख़ारिज कर दिया। बाज़ार के दुकानदारों ने सौदा देने से इनकार कर दिया। चारों तरफ़ से लानतो-फटकार

के आवाज़े कसे जाने लगे। जो लोग पहले अपनी अंजुमन के सदर से हमकलाम होना बाइसे-शरफ़ ख़याल करते थे अब वही अलानिया गलियों में उनके मुँह पर सलवातें सुनाने लगे। शहर के लौंडे उनके घर के सामने क़तार बाँधकर उन्हें गंदी गालियाँ देते। मुहल्ले की औरतें वावैला करतीं। जब वह या उनकी अहलिया गली में से गुज़रते तो अपने मकानों से उनके सरों पर राख और कूड़ा-कर्कट फेंक देतीं। मुसलमान धोबी ने कपड़े धोने से इनकार कर दिया। सक़्क़े ने पानी भरना बंद कर दिया, और वह रोटी पकाने को मुहताज हो गए। दो दिन घर में जो अचार, मुरब्बा वग़ैरा पड़ा था, वही खाते रहे। आख़िर पड़ोस की एक औरत रात के वक़्त पानी के एक-दो घड़े लाने पर रज़ामंद हो गई।

ज़िंदगी में पहली बार हिंदुओं की दुकानों से सौदा आया। ग़रज़, मुसलमानों ने हर मुमकिन तरीक़े से अपने साबिक़ सदरे-अंजुमन का क़ाफ़िया तंग करने की कोशिश की। लेकिन ख़ुदा ने हर बात में अपने बंदे की मदद की। शेख़ रहमतुल्लाह अपनी बिरादरी के लोगों को समझाते थे कि नाजायज़ दबाव उन्हें किसी तरह ख़ुदावंद की राह से दूर नहीं कर सकेगा। पौलुस रसूल की बात उन्हें सुनाते थे कि

> कौन हमें मसीह की मुहब्बत से जुदा करेगा? क्या कोई मुसीबत, तंगी, ईज़ारसानी, काल, नंगापन, ख़तरा या तलवार?...मसीह हमारे साथ है और हमसे मुहब्बत रखता है। उसके वसीले से हम इन सब ख़तरों के रूबरू ज़बरदस्त फ़तह पाते हैं। क्योंकि मुझे यक़ीन है कि हमें उसकी मुहब्बत से कोई चीज़ जुदा नहीं कर सकती : न मौत और न ज़िंदगी, न फ़रिश्ते और न हुक्मरान, न हाल और न मुस्तक़बिल, न ताक़तें, न नशेब और न फ़राज़, न कोई और मख़लूक़ हमें अल्लाह की उस मुहब्बत से जुदा कर सकेगी जो हमें हमारे ख़ुदावंद मसीह ईसा में हासिल है। (रोमियों 8:35,37–39)

मियाँ साहब एक हफ़्ते के क़ियाम के बाद अपने भाई की लड़कियों बीबी अल्लाह-दित्ती और बरकत बीबी जिनकी उम्र अठारा साल और ग्यारह साल थी, अपने साथ ले गए ताकि उन्हें पठानकोट मिस कैंबल के स्कूल में दाख़िल कर दें। शेख़ साहब के दो बेटे इनायतुल्लाह और नेमतुल्लाह जो आठ साल और चार साल के थे नारोवाल के स्कूल में पहले ही दाख़िल थे।

बेटे बरकतुल्लाह की ईमान तक राह

शेख़ रहमतुल्लाह के बपतिस्मा पाने के तक़रीबन तीन हफ़्ते बाद मैं जो उनका बड़ा बेटा था गरमियों की छुट्टियाँ काटने के लिए घर आया। मुझे वालिदैन के मसीह होने की ख़बर न दी गई थी। मुहल्ले के लोग आपस में सरगोशियाँ करके बाप के ख़िलाफ़ साज़िशें खड़ी कर रहे थे। उन्होंने चचा मोहसिन अली को बुलाया और उसे उकसाया कि जायदाद के लिए मुक़दमा करे। चचा मोहसिन अली निहायत कट्टर शिया थे। लेकिन बाप ने उन्हें बचपन से पाला था, स्कूल के अख़राजात बरदाश्त किए थे, शादी कर दी थी, उनके बच्चों को पाला-पोसा था, पहली बीवी के मरने के बाद दूसरी शादी कर दी थी और दूसरी बीवी के पहले बच्चों को भी पाल रहे थे। मोहसिन अली यह एहसान कभी भूल नहीं सकते थे। उन्होंने मुक़दमा तो न किया, लेकिन जायदाद की तक़सीम पर ज़िद करके बाप को कहने लगे, "जिस तरह बरकत अली आपका बेटा है मैं भी आपका बेटा हूँ।" वह निस्फ़ जायदाद पर इसरार करने लगे।

जवाब में बाप ने तमाम क़ाबिले-इंतक़ाल अशया, चाँदी-सोने के ज़ेवरात, घर का सामान, यहाँ तक कि आटा-दाल तक का आधा हिस्सा उन्हें दे दिया। अब शेख़ साहब पौलुस रसूल के अलफ़ाज़ का मतलब समझे,

> उस वक़्त यह सब कुछ मेरे नज़दीक नफ़ा का बाइस था, लेकिन अब मैं इसे मसीह में होने के बाइस नुक़सान ही समझता हूँ। हाँ, बल्कि मैं सब कुछ इस अज़ीमतरीन बात के सबब से नुक़सान समझता हूँ कि मैं अपने ख़ुदावंद मसीह ईसा को जानता हूँ। उसी की ख़ातिर मुझे तमाम चीज़ों का नुक़सान पहुँचा है। मैं उन्हें कूड़ा ही समझता हूँ ताकि मसीह को हासिल करूँ और उसमें पाया जाऊँ। (फ़िलिप्पियों 3:7–9)

मुहल्ले के लोगों ने दूसरी चाल यह चली कि चचा को कहने लगे, "अब रहमत अली ईसाई हो गया है, इसलिए उसे विरासत का हक़ हासिल नहीं। जिस मकान में वह रहता है आबाई है; उसे निकाल बाहर करो, फिर देखेंगे कि उसे कौन रिहाइशी मकान देगा।" जवाब में बाप ने उसे इस एक मकान के एवज़ पाँच मकान दे दिए और तीन दुकानों में से दो दुकानें उसे दे दीं ताकि उन किरायों से उसके और उसकी बीवी के बच्चों की परवरिश हो जाए।

जब मुहल्लेवालों ने देखा कि यह चाल भी कारगर न हुई तो तीसरी चाल वह यह चले कि चचा मोहसिन अली को कहा, “बाप और बेटे में जुदाई डाल दो और बरकत अली को अपने पास रख लो।” क्योंकि वह सब जानते थे कि मुझे चचा से बहुत मुहब्बत है। जब मैं आया तो वह मुझे कहने लगे, “भाई जी तो काफ़िर हो गए हैं। किसी मोमिन को रवा नहीं कि वह काफ़िर के साथ रहे। अब तुम मेरे साथ रहो, क्योंकि उनके साथ खाना खाना भी हराम है।”

मैंने जवाब दिया, “मैं यह हरगिज़ न करूँगा। वह काफ़िर नहीं बल्कि अहले-किताब हैं। उनके साथ रहना और खाना खाना जायज़ है। मैं ईसाई नहीं हूँगा, लेकिन मैं उनका साथ ऐसे आड़े वक़्त में कभी न छोड़ूँगा जब सब लोग और आप भी उनके मुख़ालिफ़ हो गए हैं।”

मेरे चचा दीन के मामले में हमेशा मेरे हादी रहे थे। उन्होंने मुझे एक किताब दी और कहा, “इसका ग़ौर से मुतालआ करना। यह तुम पर किताबे-मुक़द्दस की ख़ामियाँ ज़ाहिर कर देगी। मज़हबी उमूर में भाई जी की बातें न सुनना।”

इस रिसाले का नाम ज़ुबदतुल-अक़ावील था जिसने यह साबित करने की कोशिश की थी कि किताबे-मुक़द्दस ख़ुदा का असली कलाम नहीं बल्कि मुहर्रफ़ है। आख़िरी हिस्से में पेश कर दिया गया था कि क़ुरान की निसबत इंजील की तालीम नाक़िस है। क्योंकि उस के अहकाम पर अमल नहीं किया जा सकता।

जब मुख़ालिफ़ीन ने देखा कि यह चाल कारगर नहीं हुई तो वह एक और चाल चले। अगले रोज़ उन्होंने क़ौम के चंद सरबराहों को मेरे होनेवाले सुसर शेख़ ग़ुलाम सादिक़ की दुकान पर इकट्ठा करके मुझे बुला भेजा। शेख़ ग़ुलाम सादिक़ कहने लगा, “देख तू मेरा बेटा है। मैं तेरे तमाम अख़राजात का हामिल हूँगा और तुझे एम.ऐ. तक तालीम दिलवाऊँगा। तू मेरे पास चला आ। तेरा बाप तो लालच के मारे ईसाई हो गया है।”

सब लोगों ने मुझे समझाना शुरू किया। मैंने जवाब दिया, “आप ख़ुद जानते हैं कि तमाम क़ौम में बाप जैसा नेक और पारसा शख़्स नहीं है। आप उन पर लालच की तोहमत लगाते हैं, जो सालों से आपका सदरे-अंजुमन रहा है और रास्तगोई, दियानतदारी, मिज़ाज की संजीदगी और ग़ुरबा-परवरी में अपना सानी नहीं रखता। अगर उन्हें लालच होता तो क्या वह अपनी जायदाद की ऐसी तक़सीम करते? आप ही ख़ुदा लगती बात करें। आप मेरे ताया जी के बारे में भी कहा करते थे कि वह लालच के मारे ईसाई हो गए हैं। लेकिन आपके सामने उन्होंने दुनिया पर लात मारी और फ़क़ीर हो गए। क्या हिर्स

इसी को कहते हैं? हाँ, आप लोग मुझे लालच दे रहे हैं ताकि मैं उनसे जुदा हो जाऊँ। मगर मैं आप सबको छोड़ दूँगा। लेकिन उन्हें हरगिज़ नहीं छोड़ूँगा और इस्लाम को भी तर्क नहीं करूँगा जब तक ईसाई ईमान की सदाक़त मुझ पर ज़ाहिर न हो जाए।"

जब मैं घर आया तो मैंने बाप से उन बातों का ज़िक्र किया जो चचा मोहसिन अली ने और ग़ुलाम सादिक़ ने मुझे कही थी। उन्होंने जवाब दिया कि यह बेहतर होगा कि तुम क़ुरानो-इंजील का मुक़ाबला करके ख़ुद देखो। क्योंकि इंजील में लिखा है,

> सब कुछ परखकर वह थामे रखें जो अच्छा है। (1 थिस्सलुनीकियों 5:21)

उनके इंतज़ाम के मुताबिक़ मैं जून की कड़कती धूप में वहाँ के अंग्रेज़ ख़ादिम के पास गया। उन्होंने कहा, "हम मत्ती की इंजील पढ़नी शुरू करेंगे।"

मैंने जवाब दिया, "मैं अनाजील के मज़ामीन से ख़ूब वाक़िफ़ हूँ और इसके बहुत-से मक़ामात मुझे हिफ़्ज़ हैं। आप मेरे एतराज़ात रफ़ा करें।" यह कहकर मैंने ज़ुबदतुल-अक़ावील को खोलकर बहुत-से एतराज़ात पेश कर दिए।

उनको न क़ुरान से वाक़िफ़ियत थी और न इस्लाम के उसूलों का इल्म था। न वह मुतनाक़िस मक़ामात के जवाब दे सके। सबसे बड़ी दलील उन्होंने यह दी कि ईसाई मज़हब हक़ है, क्योंकि सलतनते-बरतानिया पर सूरज ग़ुरूब नहीं होता और यह सलतनत ईसाई है। वह बेचारे निरे अंग्रेज़ थे जो हुकूमत के नशे में सरशार थे। ग़ुरूर उनकी रफ़्तार से टपकती थी।

एक हफ़्ते के बाद मैंने उनसे कहा, "मैं कल से नहीं आऊँगा, क्योंकि धूप में ढाई मील आता-जाता हूँ। आपने कभी पानी तक न पिलाया, और न आप मेरे किसी एतराज़ का जवाब देने के अहल साबित हुए हैं।"

मैंने यही बात बाप से कही। उन्होंने मुझे मीज़ानुल-हक़ और मज़ीद कई-एक किताबें दे कर कहा, "यह किताबें तुम्हारी मुश्किलात को हल कर सकेंगी।" मैं इन किताबों का ग़ौर से दिन-रात मुतालआ करता रहा। मेरे चचा अपने काम पर वापस चले गए थे। उनकी ग़ैरहाज़िरी में मौलवी हशमत अली आए हुए थे। मैं उनके पास गया, लेकिन वह बेचारे ईसाई दीन के उलूम से कोरे थे और इन मुख़्तलिफ़ किताबों के एतराज़ात का जवाब न दे सके। क्योंकि वह सिर्फ़ शिया मज़हब से सतही तौर पर ही वाक़िफ़ थे, और इन किताबों में शिया और अहले-सुन्नत की मुस्तनद किताबों के हवाले थे। मैंने हकीम मुहम्मद वारिस और क़ौम के सरबराहों से इन किताबों के एतराज़ों का ज़िक्र किया, लेकिन सब बेसूद

साबित हुआ। लाचार मैं इन किताबों के मज़ामीन की रौशनी में अपने एतराज़ात और ज़ुबदतुल-अक़ावील के एतराज़ात पर ग़ौर करने लगा।

ज्यों-ज्यों मैं मुतालआ करता गया मुझ पर यह ज़ाहिर होता गया कि इंजील मुहर्रफ़ नहीं है और कि अज़ रूए-क़ुरान पैग़ंबरे-इस्लाम क़ियामत के रोज़ गुनाहगारों की शिफ़ाअत और सिफ़ारिश नहीं कर सकेंगे। क़ुरान के मुताबिक़ वह सिर्फ़ अरब के रसूल होकर दीगर अंबिया की तरह भेजे गए थे और जहान को नजात नहीं दे सकते। इंजील की तालीम रूहानी है। क़ुरान एक अख़लाक़ी किताब है जो किसी शख़्स को हिदायत तो दे सकती है लेकिन गुनाहों के पंजे से नहीं छुड़ा सकती। आख़िर मैंने बाप से कहा, “मैं भी मसीह का पैरोकार होने को तैयार हूँ।”

वह बहुत ख़ुश हुए और कहा, “ख़ुदा का शुक्र हो जिसने हम सब पर रहम किया है और सबको नूरे-ईमान अता किया है।”

मेरा बपतिस्मा भी 1907 में हुआ। मेरा ईसाई नाम बरकतुल्लाह रखा गया। जब मैं बपतिस्मा पाकर इबादतगाह से बाहर निकला तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं गोया हवा में चल-कूद रहा हूँ। क्योंकि गुनाहों के बोझ का एहसास जो मुझे सताता रहता था जाता रहा, और उसकी जगह ख़ुशी, चैन और इतमीनान ने मेरे दिल में जगह ले ली। इस अजीब तजरिबे को मैं ज़िंदगी के आख़िर तक नहीं भूल सकता। बपतिस्मा पाने के तीन रोज़ बाद मैं वापस बटाला चला गया।

मुख़ालिफ़ीन का आख़िरी हरबा ज़्यादा कामयाब रहा। हमारे ईसाई होने के चंद माह बाद सियालकोट के हाकिमे-ज़िला ने अंग्रेज़ पादरी को म्यून्सिपल कमेटी का सदर बना दिया था। क़ौम का एक फ़रद सैक्रटरी था। उसने पादरी को “हुज़ूर, ख़ुदावंद, आक़ा, मालिक” कह कहकर अपने हाथों पर चढ़ा लिया। फिर बाप पर म्यून्सिपल ऐक्ट के मातहत दो-तीन मुक़दमे करके कहा कि अगर आपने रहमतुल्लाह की हिमायत की तो आप मुंसिफ़मिज़ाज न होंगे। अंग्रेज़ क़ौम इनसाफ़ के लिए मशहूर है। पादरी उर्दू जानता न था और न बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था। उसने काग़ज़ात पर दस्तख़त कर दिए और मुक़दमात दायर हो गए जिससे बाप को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। यों उन्हें मुसलमानों से बढ़कर एक ईसाई ख़ादिमुद्दीन के हाथों ज़्यादा ईज़ा पहुँची।

> من از بیگانگاں ہرگز نہ نالم   کہ با من ہرچہ کرد آں آشنا کرد
>
> मैं बेगानों के बारे में हरगिज़ शिकायत नहीं कर रहा

> क्योंकि जो कुछ मेरे साथ हो रहा है वह मेरा जाननेवाला कर रहा है।

मुहब्बत का ग़लबा

बपतिस्मा पाने से पहले का ज़िक्र है जब तक मैं घर में रहा। हमारे मकान पर बिरादरी ने शहर के ग़ुंडों का पहरा लगा दिया था ताकि न कोई हमको मिलने आए और न पानी भरे। मैं ज़नाना मिशन के इहाते से दो-तीन मरतबा पानी का एक घड़ा और एक बालटी ले आता था। लेकिन गरमियों के दिनों में हमसाई का एक घड़ा पानी और मेरा लाया हुआ पानी किस तरह काफ़ी हो सकता था। तो भी गुज़ारा होता गया। मेरे बटाला आने के बाद पानी भरने की मुश्किल बढ़ गई। परमानंद साहब लिखते हैं,

> रहमतुल्लाह पर पानी की वजह से सख़्त मुसीबत आई। होते होते यह ख़बर अंग्रेज़ ख़ादिम तक पहुँची। उसने क़ौम के लोगों को बहुत समझाया, लेकिन चूँकि वह अभी सदर नहीं बना था उसकी किसी ने न मानी। आख़िर उसने उनके बाप को बताए बग़ैर सियालकोट डपटी कमिश्नर को लिखा। डपटी कमिश्नर ख़ुद नारोवाल आया, और उसने सबको बुलाया। जब उनके बाप को यह पता चला कि ख़ादिम ने डपटी कमिश्नर को बुला भेजा है तो उन्होंने बहुत बुरा माना। क्योंकि वह मसीह ख़ुदावंद की ख़ातिर हर क़िस्म की ईज़ा ख़ुशी और सब्र से बरदाश्त करना चाहते थे ताकि उनके सब्र का असर क़ौम पर हो। ख़ैर, जब सब जमा हुए तो हाकिमे-ज़िला ने तमाम बातों को दरियाफ़्त करके कहा कि मुल्क के क़ानून के मुताबिक़ मज़हब की तबदीली से साबिक़ हुक़ूक़ ज़ाइल नहीं हो जाते। इस वास्ते मियाँ रहमतुल्लाह का हक़ है कि जिस कुएँ से वह पहले पानी लेते थे उसी कुएँ से अब भी लें।
>
> यह बात क़ौम के लोगों के लिए मुश्किल थी, क्योंकि वह कुआँ बड़ी मसजिद का कुआँ था। तब उसने मियाँ साहब को कहा, “बालटी लाओ और मेरे सामने कुएँ से पानी निकालो।”
>
> तब उनके बाप खड़े हो गए और क़ौम से मुख़ातिब होकर कहने लगे, “भाइयो, मैंने साहब डपटी कमिश्नर के आगे शिकायत नहीं की और न मुझे यह ख़बर थी कि वह आएँगे। क्योंकि मैं मसीह ख़ुदावंद के नक़्शे-क़दम पर चलकर अपने ईमान के लिए दुख उठाना चाहता था। और मैं रसूलों की तरह ख़ुदा का शुक्र करता था कि मैं इस लायक़ ठहरा कि ख़ुदावंद के नाम की ख़ातिर बेइज़्ज़त किया जाऊँ।

बाज़ारों और गलियों में लानतो-फटकार की आवाज़ें मेरे लिए फ़ख़्र का बाइस थीं। आपका इसमें क़ुसूर भी नहीं, क्योंकि आप इस ख़याल से यह सब बातें कर रहे हैं कि आप ख़ुदा की ख़िदमत कर रहे हैं। आपकी शरीअत के शिकंजे ने यह सब पेच घुमाए हैं और मेरा मुकम्मल क़ताए-ताल्लुक़ कर दिया है। लेकिन अब आपने ख़ुद अपने कानों से हाकिमे-ज़िला के हुक्म को सुन लिया है कि जो मेरा हक़ है वह आप मुझसे क़ानूनन छीन नहीं सकते। मैंने आपको यही समझाया लेकिन आपने न मानना था और न माने, हालाँकि गरमी के सबब से हम प्यासे रहे। आपने मेरे घर को करबला बना दिया। यज़ीद की तरह आप मेरे बच्चों को रोटी-पानी के बग़ैर बिलकते देखते रहे और टस से मस न हुए।

अब यह कुआँ जिसमें से पानी निकालना मेरा हक़ है मसजिद का कुआँ है। अगर मैंने अपना हक़ इस्तेमाल करके उसमें से पानी निकाला तो आपके ख़याल के मुताबिक़ यह पलीद हो जाएगा और आप उसमें से पानी नहीं भरेंगे। आपके बच्चों की भूक-प्यास का वही हाल हो जाएगा जो हमारा हो रहा है और मैं यह बात हरगिज़ नहीं चाहता। क्योंकि मेरे ख़ुदावंद का हुक्म है कि जो कुछ तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें वही तुम भी उनके साथ करो। मैं ख़ुशी से अपने हक़ से सबके रूबरू दस्तबरदार होता हूँ। मेरी अर्ज़ सिर्फ़ यह है कि आप सक़्क़े को मेरे घर में पहले की तरह पानी भरने दें। वह दूसरे ईसाइयों के घरों में भी तो पानी भरता है।”

इन बातों को सुनकर सब ख़ामोश हो गए। फिर उनका सरबराह लीडर अपना सर नीचा करके बोला, “भाई रहमत अली। आपने हमारी इज़्ज़त रख ली। हम इक़रार करते हैं कि आइंदा आपको रोटी-पानी के मामले में कोई रुकावट न होगी। लेकिन आप बिरादरी से ख़ारिज रहेंगे।”

यों मियाँ रहमतुल्लाह के अलफ़ाज़ ने मुहल्ले की फ़िज़ा को बदल दिया और गली गली में लोग यही कहते सुनाई दिए कि शेख़ रहमत अली ने हमारी लाज और हमारे मज़हब की लाज रख ली है। ख़ुदा का कलाम मियाँ जी के हक़ में पूरा हुआ कि

> अज़ली ख़ुदा तेरी पनाहगाह है, वह अपने अज़ली बाज़ू तेरे नीचे फैलाए रखता है। (इस्तिसना 33:27)

रफ़्ता रफ़्ता हालात ने पलटा खाया। मियाँ जी की मुहब्बत सब रुकावटों पर ग़ालिब आई। एक-दो साल के अंदर सब छोटे-बड़े उनकी बेरिया ज़िंदगी, ख़ुलूसदिली, रास्तरवी और मुहब्बत भरी ज़िंदगी की वजह से उनकी हद से ज़्यादा इज़्ज़त करने लगे।

मुझे नारोवाल गए कोई तीन साल गुज़रे थे कि हाउस टैक्स की एक कमेटी बनाई गई जिसमें सब मज़हबों के नुमाइंदों को सब घरों पर टैक्स लगाकर बारह सौ रुपए सालाना जमा करना था। मुसलमानों ने मियाँ रहमतुल्लाह को अपना नुमाइंदा मुंतख़ब किया। जब उनसे कहा गया कि वह मुसलमान नहीं है तो उन्होंने कहा, "कोई हर्ज नहीं। उसमें एक सिफ़त है जो हम किसी और में नहीं पाते। वह खरी और बेलाग सच्ची बात करता है। किसी की तरफ़दारी नहीं करता और न किसी से डरता है। वह हमारे हालात से वाक़िफ़ भी है और फ़राख़दिल है, और उस पर हमारा एतबार और भरोसा है।"

यों मियाँ साहब ने अपने मुख़लिसाना सुलूक और सब्रो-मुहब्बत से अपने जानी दुश्मनों पर फ़तह पाई। वह जिस क़दर कमगो और नरमगो के इनसान थे उसी क़दर उनकी ज़बान में असर था। लोग ख़ुद बख़ुद उनकी तरफ़ खिंचे चले आते थे। अगरचे उनकी तबीयत में नरमी थी, लेकिन वह इरादे के पक्के थे। चुनाँचे 50 बरस से ज़ायद उम्र में उन्होंने यकलख़्त हुक़्क़े का इस्तेमाल तर्क कर दिया हालाँकि वह हुक़्क़े के इस क़दर आदी थे कि उनकी अहलिया सुबह के वक़्त उन्हें जगाने से पहले हुक़्क़ा तैयार करके उनके मुँह के पास रख दिया करतीं। क्योंकि हुक़्क़े के कश लेने के बाद उनके जिस्म में दम फिरा करता था।

झूट, गाली-गलौच और जली-कटी सुनाने से उन्हें सख़्त नफ़रत थी। जो उनकी सोहबत में बैठता उससे यह बातें ख़ुद बख़ुद छुट जातीं। उन्होंने "सत-प्रचारक सभा" क़ायम की जिसका जलसा हर महीने में दो बार हुआ करता था। उसकी मेंबरी की एक शर्त थी कि मेंबर ख़ुद सच बोलेगा और दूसरों को सच बोलने की तलक़ीन करेगा। इस सभा का ऐसा अच्छा असर हुआ कि लोग अपने छोटे-मोटे मुक़दमे और पेचीदा मामले इस सभा के सामने लाने लगे। क्योंकि उन्हें रहमतुल्लाह पर एतबार था। जब वह मुसलमान थे तो अंजुमने-शियाँ के सदर थे, लेकिन अब तो वह तमाम नारोवाल के सदर हो गए।

जब लोग उनसे रफ़्ता रफ़्ता सौदा मोल लेने लगे तो वह एक ही दाम मुँह से कहते थे और गाहकों से एक पैसा कमो-बेश नहीं लेते थे। बाज़ औक़ात मेरे सामने एक आने पर पचास-साठ रुपएवाले गाहक को मोड़ देते थे। वह कहते थे कि एक ज़बान और पूरा तोल ख़ुदावंद को पसंद है। जब रफ़्ता रफ़्ता गाहकों को उनके सच बोलने का इल्म हो गया तो उनकी दुकान चल पड़ी और सैंकड़ों रुपयों का माल बग़ैर किसी तकरार और मग़ज़-ख़ोरी के बिकने लगा।

रहमतुल्लाह की दुकान क्या थी, मुनादी का अच्छा-ख़ासा मक़ाम था। जब कभी मैं उधर से गुज़रता यही देखता कि पाँच-सात आदमी उनके पास बैठे हैं, और वह उन्हें इंजील सुना रहे हैं।

जिन दिनों में उनका बायकाट था, उस ज़माने में कोई गाहक तो उधर जाने का नाम भी नहीं लेता था। उनकी माली तबाही को देखकर मिशनवालों ने उन्हें कहा कि आप क्लार्काबाद के गाँव के मैनेजर हो जाएँ। लेकिन उन्होंने यह बात मंज़ूर न की ताकि लोग यह ख़याल न करें कि वह लालच की ख़ातिर ईसाई हो गए हैं। उनका दीनी जोश देखकर जमातवालों ने उनसे कहा, “आप ख़ादिमुद्दीन बन जाएँ।“ लेकिन उन्होंने आज़ादाना तबलीग़ की ख़िदमत करने का तहैया कर लिया हुआ था। वह चाहते थे कि वह पौलुस रसूल की तरह दुकानदारी करके इंजील शरीफ़ का पैग़ाम लोगों को सुनाएँ।

जब वह अगस्त 1912 में फ़ौत हुए तो उनके जनाज़े के साथ न सिर्फ़ ईसाई थे बल्कि हिंदुओं, सिखों, शियों और सुन्नियों की एक भारी तादाद थी हालाँकि उस रोज़ बारिश हो रही थी।